संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : ९५
नवम्बर २०००

हिन्दी

सुरम्य प्रकृति का रचयिता ! तू कैसा है ?
प्रभु तेरी जय हो ! एक तू ही प्रेम करने योग्य है।
सर्व का आधार, सर्व का सुहृद, सर्वेश्वर...

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ११
अंक : ९५
९ नवम्बर २०००
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

आस्था और विवेक

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

बिना आस्था के कोई मानव रह ही नहीं सकता। किसी-न-किसी देवी-देवता में उसकी आस्था होगी, किसी-न-किसी व्यक्ति अथवा वस्तु में उसकी आस्था होगी। अगर वह गलत जगहों पर आस्था रखता है तो उसकी गलत यात्रा होती है और सही जगह पर आस्था रखता है तो देर-सबेर आस्था के आधार परमात्मा को पाने में भी वह कामयाब हो जाता है।

एक होती है आस्था और दूसरा होता है विवेक।

धन, पद, भोग में आस्था नहीं रखनी चाहिए वरन् इन चीजों में विवेक की जरूरत है। देखी हुई चीजों में आस्था की जरूरत नहीं, समझ की जरूरत है।

'यह गुलाब है...' इसमें आस्था रखें ? श्रद्धा करें ? नहीं, इसमें आस्था की जरूरत नहीं है वरन् ज्ञान की जरूरत है कि : 'यह कहाँ से आया है ? इसका क्या उपयोग है ? अंत में कहाँ जायेगा ?' इसकी समझ होनी चाहिए।

अगर व्यक्ति देखी हुई तुच्छ चीजों में आस्था कर लेगा तो जहाँ से आस्था की शक्ति उठती है, उसका उसे पता ही नहीं चलेगा।

जो देखी हुई चीज है उसमें विवेक होना चाहिए और वेद में आस्था होनी चाहिए। हम लोग क्या करते हैं ? देखी हुई चीजों में आस्था करते हैं कि : 'इतना धन मिल जाय तब हम सुखी होंगे... यह पद मिल जाय तब हम सुखी होंगे... ऐसी पत्नी मिल जाय तब हम सुखी होंगे...' यहाँ विवेक का उपयोग नहीं करते कि : 'इतना धन जिनके पास है उनके क्या हाल हैं ? ऐसा पद जिनके पास है उनके क्या हाल हैं ? ऐसी पत्नी जिनके पास है उनके क्या हाल हैं ?... और अंत में क्या ? ...अंत में क्या ?...अंत में क्या ?' अगर आस्था की जगह पर विवेक कर दें तो काम बन जाय।

पहले आस्था घेर लेती है, बाद में बेवकूफी पकड़ लेती है। जहाँ विवेक करना था वहाँ आस्था की इसीलिये जिंदगी भर मजदूरी करनी पड़ती है और अंत में... कुछ नहीं। आस्था कर लेते हैं कि : 'अमुक वस्तु मिल जायेगी, अमुक परिस्थिति आ जायेगी, तब सुखी होंगे...' लेकिन विवेक नहीं करते कि इनसे दस गुना जिनको मिला, वे भी 'हाय-हाय' करके मर गये।

कह रहा है आसमाँ, ये समाँ भी कुछ नहीं।
रो रही हैं शबनमें, ये नज़ारे कुछ नहीं॥
जिनके महलों में, हजारों रंग के जलते थे फानूस।
झाड़ उनकी कब्र पे हैं, और निशाँ कुछ भी नहीं॥
जिनकी नौबतों से, गूँजते थे सदा को आसमाँ।
वे खुद बेदम हुए, अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥

'राजाधिराज ! महाराज ! अन्नदाता !...' करके जिनके चरणों में पुष्प बिछ जाते थे, सुंदरियाँ जिनको चँवर डुलाती थीं, चलते थे तो धरती और आकाश एक करके चलते थे ऐसे लोगों की अब हड्डी तक नहीं मिलती है।

जो कुछ भी मिलता है, वह अंत में बिछुड़ता जरूर है। अरे ! जो मिलना होगा धन, पुत्र-परिवार आदि वह तो प्रारब्ध वेग से मिलेगा। मिल जाये फिर अंत में क्या ? समय व्यर्थ में खत्म हो जायेगा। अगर ईश्वर को पीठ देकर उनका रक्षण, पालन-पोषण करोगे तो वे ही अंत में ठोकर मार देंगे। जो लोग ईश्वर को पीठ देकर लड़के को बड़ा करने में आस्था करते हैं, लड़के की नौकरी में आस्था करते हैं, लड़के के द्वारा अपना नाम रोशन करने में आस्था करते हैं उन्हीं के बच्चे उन्हें तंग करते हैं और वे रोते रहते हैं। जो लोग ईश्वर में आस्था करते हैं एवं विवेक से उनका पालन-पोषण करते

हैं उन्हें रोने की जरूरत नहीं पड़ती।

लोग आस्था करते हैं कि : 'बच्चा बड़ा होगा, पढ़ेगा-लिखेगा, लाड़ी लायेगा... हम बूढ़े होंगे और पानी माँगेंगे तो दूध देगा...' अगर इसी आस्था से बच्चे को पढ़ाया-लिखाया, शादी करायी तो भगवान थप्पड़ मारते हैं कि : 'मैं तेरे साथ हूँ, मुझमें आस्था नहीं करता और इन तुच्छ संबंधों में आस्था करता है ?' ले, अब वही बेटा दुःख देने लगता है। लेकिन जिसने बिना आस्था के, केवल विवेक से बच्चे का पालन-पोषण किया उसका बच्चा बड़ा होकर अगर उसे सुख नहीं भी देता तो उसे दुःख नहीं होता।

चार प्रकार के पुत्र होते हैं : वैरी, कर्जदार, उदासीन और सेवक। कोई कर्ज चुकाने के लिये पुत्र होकर आता है, कोई वैरी होता है, कोई उदासीन होता है और कोई सेवक होता है। जो सेवक पुत्र होगा वही बुढ़ापे में सेवा करेगा। अतः आस्था रखने की क्या जरूरत ? अगर चारों में आस्था रखी तो तीन से तो ठोकर ही मिलेगी और चौथे सेवक पुत्र में आस्था रखी तो मरते समय उसमें आसक्ति हो जायेगी और उसीके शरीर से फिर बेटा होकर आना पड़ेगा।

जिनकी आस्था जगत के पदार्थों एवं संबंधों में है उन्हीं को रोना पड़ता है। जिनकी आस्था सत्य स्वरूप में है, जगदीश्वर में है उनके रोने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता है। **'आशा तो एक राम की, और आस निराश...'** ईश्वर में आस्था छोड़कर व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति में आस्था ? 'बुढ़ापे में अमुक व्यक्ति हमारा सहारा बनेगा...' यह आस्था ? अरे ! हजार-हजार बार बुढ़ापा आया और चला गया लेकिन जो कभी-भी आपका साथ छोड़कर नहीं गया उस अपने शाश्वत् स्वरूप में, नित्य नारायण स्वरूप में आस्था कर लो हे अमर आत्मा !

विवेक करके बेटे और धन का उपयोग कर लो, उनमें आस्था मत करो। गाड़ी-बँगला, पत्नी-पुत्र इन पर भरोसा करनेवाला अंत में जरूर ठोकर खायेगा, इनसे ठुकराया जायेगा। ईश्वर के सिवाय कहीं भी आस्था की तो अंत में ठोकर खाना ही है, बचने का और कोई उपाय नहीं है। जो मरुभूमि में पानी की आस्था कर ले वह कितना भी चतुर और बलवान् हो लेकिन क्या करेगा ? यहाँ तो विवेक चाहिए कि : 'यह मरुभूमि है, जल नहीं है।' यहाँ आस्था नहीं, विवेक की जरूरत है। ऐसे ही जगत के जो बदलनेवाले, नष्ट होनेवाले पदार्थ हैं उनमें भी आस्था नहीं, विवेक की जरूरत है कि : 'ये सब दिखने भर को हैं, इनमें सुख टिकेगा नहीं... इनसे व्यक्ति सदा के लिये सुखी नहीं हो सकता, थोड़ी देर के लिये हर्ष होगा लेकिन अंत में देखो तो कुछ नहीं...' ऐसा करके जगत की चीजों का उपयोग कर लो और जगदीश्वर में आस्था कर लो तो ज्ञान हो जाये।

दो बातें होती हैं : एक संयोग और दूसरा वियोग। आप और हम एक-दूसरे से मिले इसको संयोग बोलते हैं और बिछुड़ने को वियोग बोलते है। फिर संयोग होगा कि नहीं, इसमें संदेह है लेकिन वियोग होगा कि नहीं, इसमें संदेह नहीं है। पत्नी, बच्चे, मकान मिले हैं। अब दूसरी बार ऐसे मिलेंगे कि नहीं, इसमें संदेह है लेकिन जो मिला है उसको छोड़कर जाना पड़ेगा कि नहीं, इसमें कोई संशय नहीं है।

किसीके पास जमीन है। वह चाहे तो कीर्तन-भजन-सत्संग कराते-कराते उसका उपयोग करते हुए छोड़े, चाहे 'मेरी है... मेरी है...' ऐसी ममता करके मरे यह उसके हाथ की बात है।

आपके पास जो जमीन है उसे 'मेरी-मेरी' करके हजारों लोग चले गये होंगे। उसमें वे आस्था करके गये तो जन्मे और मरे किन्तु विवेक करके समझ लिये होते तो मुक्त हो जाते।

'यह मेरा... वह मेरा...' ऐसा करके परिवर्तनशील पदार्थों में हम जो आस्था करते हैं वह चित्त को शुद्ध नहीं होने देती। भजन-कीर्तन तो करते हैं, मंदिर में भी जाते हैं, संतों के पास भी जाते हैं लेकिन परमात्मा की शांति का जो अनुभव होना चाहिए वह नहीं होता। क्यों ? क्योंकि जहाँ (परमात्मा में) आस्था करनी चाहिए वहाँ आस्था

नहीं होती और जहाँ (जगत में) विवेक करना चाहिए वहाँ विवेक नहीं होता।

जहाँ विवेक करना चाहिए वहाँ आस्था हो जाती है तो वह विवेक को दबा देती है। आस्था के साथ विवेक भी चाहिए। कोई कहता है : 'मान लो... मान लो...' मान-मान करके तो कई मर गये और मान्यता को तो कोई तर्क हटा भी सकता है लेकिन अपने शुद्ध 'मैं' के ज्ञान को कोई तर्क नहीं हटा सकता।

आसक्ति के कारण ही चित्त में दोष उत्पन्न होते हैं, चित्त मलिन होता है और मलिन चित्त में अपनी आत्मा का दीदार नहीं हो सकता। जैसे, आईना मलिन हो तो उसमें अपना सुन्दर रूप भी नहीं दिखता, किन्तु जैसे-जैसे मलिनता कम होती जाती है, प्रतिबिम्ब साफ दिखता जाता है और पूरी मलिनता नष्ट हो जाये तो प्रतिबिम्ब एकदम स्पष्ट दिखने लगता है। ऐसे ही ज्यों-ज्यों चित्त निर्मल होता जाता है, त्यों-त्यों परमात्म-आनंद और सामर्थ्य उभरने लगता है। सामर्थ्य में न उलझे, जिज्ञासा को तीव्र कर दे अपने स्व-स्वरूप परमात्मा को जानने में तो नित्य नवीन रस, नित्य तृप्ति, स्वतःसिद्ध सच्चिदानंद की प्राप्ति हो जायेगी।

कुछ वस्तुओं को मानना होता है और कुछ को जानना होता है। जो चीजें आँखों से दिख जाती हैं, इन्द्रियों के अनुभव में आ जाती हैं उन्हें जानना होता है और जो आँखों से नहीं दिखतीं, अन्य इन्द्रियों के अनुभव में नहीं आतीं, उनको मानना होता है। हम क्या करते हैं कि जो इन्द्रियों से दिखता है उसे जानने के बजाय मान लेते हैं। जैसे कि : 'यह आदमी बड़ा सुखी है।'

राजा रणजीत सिंह की शादी हो चुकी थी। वे पहली बार ससुराल जा रहे थे। राजा के साथ तो राजसी ठाठ-बाट होता ही है। उस जमाने में रेल में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के डिब्बे होते थे। प्रथम श्रेणी में राजा और बड़े-बड़े अधिकारी थे। द्वितीय श्रेणी में वज़ीर आदि थे।

किसी वज़ीर का युवान लड़का था। गाड़ी जिस भी स्टेशन पर खड़ी होती वहाँ वह राजा की बोगी के पास से गुजरता एवं टेढ़ी आँखों से रानी साहिबा को देखने की कोशिश करता। हर स्टेशन पर उसका यह प्रयास जारी रहता। राजा रणजीत सिंह की नज़र उस पर पड़ी। वे समझ गये कि यह युवक क्यों चक्कर लगा रहा है। उन्होंने उस युवक का हाथ पकड़ा। युवक घबरा गया।

रणजीत सिंह : ''घबरा मत, चल मेरे साथ।''

रणजीत सिंह उसे ले गये अपनी 'केबिन' में। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि : ''अपना घूँघट खोल।'' पति की आज्ञा होने पर रानी ने घूँघट खोला।

रणजीत सिंह ने युवक से कहा :

''ले, पेट भर के देख ले। अरे, बेवकूफ ! यह महीनों-महीनों भर मेरे साथ रही, मैं सुखी नहीं हुआ तो तू टेढ़ी आँख करके क्या सुखी होगा ?''

युवक शर्मिन्दा हुआ एवं माफी माँगकर चला गया।

पहले उस युवक को लग रहा था कि : 'रानी साहिबा का दीदार हो जाये तो सुखी हो जाऊँ...' लेकिन कब तक ? ऐसे ही पुरुष समझते हैं कि : 'अमुक स्त्री मिल जाये तो सुखी हो जाऊँ...' स्त्री समझती है कि : 'अमुक पुरुष मिल जाये तो सुखी हो जाऊँ...' लेकिन वास्तव में देखा जाये तो यह मन की उल्टी आस्था है। लोग उल्टी आस्था कर लेते हैं लेकिन विवेक नहीं करते और इसी आस्था-आस्था में उनका पूरा जीवन खर्च हो जाता है। फिर आस्थाएँ बदलती हैं लेकिन उन्हीं में रहती हैं जो दिखता है और जो नश्वर है। जिससे दिखता है उसमें आस्था नहीं हो पाती और जीव बेचारा ठोकरें खाता रहता है।

इसी प्रकार ठोकरें खाते-खाते अंत में मृत्यु का झटका लगता है और सब यहीं छूट जाता है।

(क्रमशः)

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९७ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया नवम्बर २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

भक्ति की महिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

श्रीकृष्ण कहते हैं :

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

'उद्धव ! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त कराने में उतने समर्थ नहीं हैं जितनी दिनों-दिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति।'

(श्रीमद्भागवत : ११.१४.२०)

भले ही कोई धन-दौलत के अंबार पर खड़ा हो, बड़ा सत्ताधीश हो उसका हृदय तो तपता ही रहता है लेकिन जिसको भगवान की भक्ति का छोटा-सा भी सूत्र मिल जाता है, उसके हृदय में शांति होती है, शीतलता होती है, तृप्ति होती है।

अधिक धन मिलने से, बड़ी सत्ता मिलने से, अधिक अधिकार मिलने से कोई व्यक्ति सुखी हो जाये ऐसी बात नहीं है। धन, सत्ता व अधिकार के बिना भी यदि हृदय में भगवद्प्रीति हो, संतों के लिये प्रेम हो, सत्कर्म में रुचि हो और परमेश्वर को पाने की ललक हो तो वह व्यक्ति तो धन्य है ही, उसके माता-पिता धन्य हैं, उसका कुल धन्य है और वह जिस घर में रहता है वह धरती भी धन्य मानी जाती है।

भक्ति के बिना मनुष्य पशु से भी बदतर है। पशु को बेटे-बेटी की शादी की कोई चिंता नहीं होती, महँगाई की कोई चिंता नहीं होती, तबादले का कोई तनाव नहीं होता। 'नो इन्कमटैक्स'... 'नो सेल्सटैक्स'... 'नो सरचार्ज'... 'नो अदर चार्ज'... उसे कोई चिंता नहीं होती, जबकि मनुष्य को ये सब चिंताएँ होती हैं।

गाय कभी गाली नहीं देती, हाथी कभी झूठ नहीं बोलता, पहाड़ कभी चोरी नहीं करता फिर भी वे वहीं-के-वहीं हैं। जबकि मनुष्य गाली भी देता है, झूठ भी बोलता है, चोरी भी करता है फिर भी सभी से ऊँचा माना जाता है क्योंकि वह चाहे तो जप-तप करके, साधन-भजन करके, सत्संग-स्वाध्याय करके महान् भी बन सकता है।

मनुष्य के गिरने की नौबत तो आती है लेकिन उसे सत्संग मिल जाये, संत-सान्निध्य मिल जाये तो वह इतना ऊँचा उठ जाता है कि भगवान का सखा बन जाता है, मित्र बन जाता है, सत्पुरुष भी बन जाता है। अरे ! भगवान का माई-बाप भी बन जाता है।

शास्त्र में आता है : **भजनस्य किं लक्षणम् ?** भजन का लक्षण क्या है ?

भजनस्य लक्षणं रसनम्। अंतरात्मा का रस जिससे उभरे, उसका नाम है भजन।

वस्तु, व्यक्ति, भोग-सामग्री के बिना भी हृदय में जो आनंद आता है, रस आता है वह भजन का रस है। वस्तु के बिना, व्यक्ति के बिना, विशेष परिस्थिति के बिना ही आपके हृदय में अपने अंतर्यामी आत्मदेव का रस आने लगे तो समझना कि भजन हो रहा है।

ताल-लय के साथ राग अलापने का नाम भजन नहीं है, माला घुमाने का नाम भजन नहीं है लेकिन हृदय में अंतरात्मा का रस प्रगट हो जाये तो समझना कि भजन हो रहा है। फिर चाहे शबरी भीलन की भाँति प्रभु के लिये बुहारी करते हो तो भजन है, शिवाजी की तरह गुरुआज्ञा मानकर शत्रुओं से भिड़ते हो तो भी भजन है और हनुमानजी की नांई प्रभुसेवा में लंका जला देते हो तो भी भजन है। बस, अंतःकरण से शुद्ध रस प्रगट हो जाये तो समझना कि हो गया भजन।

मनु महाराज कहते हैं कि : ''मनुष्य को तब

तक सत्कर्म और निष्काम कर्म खोज-खोजकर करने चाहिए जब तक आत्मसंतोष न हो, आत्मरस न प्रगटे।''

जब आत्मरस प्रगट होता है तो भजन अपने-आप हो जाता है, भक्त भगवद्-कृपा का अधिकारी हो जाता है। भगवान की कृपा के आगे दुनिया का पाप क्या महत्त्व रखता है ? ऐसा कौन-सा अपराध है जो भगवान की कृपा से बड़ा हो ? ऐसा कौन-सा रोग है जो परमात्मा से बड़ा हो ? भगवान कहते हैं :

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥

'उद्धव ! जैसे धधकती हुई आग लकड़ियों के बड़े ढेर को जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप-राशि को पूर्णतया जला डालती है।' (श्रीमद्भागवत : ११.१४.१९)

भक्ति फलरूपा भी है, रसरूपा भी है। भक्ति रस भी देती है और मुक्ति का फल भी देती है। भक्ति करते समय भी रस आता है और अंत में फल भी भगवत्प्राप्ति का मिलता है।

कर्म में प्रतिवाद आये तो प्रायश्चित्त करना पड़ता है लेकिन भक्ति में प्रतिवाद का प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है क्योंकि भगवान समझते हैं कि : 'बच्चा है, कोई बात नहीं। मुझे प्रेम करता है न !' प्रेम में कोई नियम नहीं होता। बच्चे की नाक बहती है, वह गंदगी कर देता है फिर भी माँ समझती है कि 'बच्चा है, अपना है।' उसे प्रेम से उठाकर उसकी गंदगी साफ कर देती है। ऐसे ही भगवान के होकर जीते हैं तो भगवान भी कहते हैं : 'चलो, जाने दो, अपना ही बालक है।'

जिसके जीवन में क्रूरता नहीं है, हिंसा नहीं है, असहिष्णुता नहीं है, द्वेष नहीं है एवं भगवान के लिये प्रीति है, जो भगवान के प्रभाव को, दयालुता को, सर्वव्यापकता को जानता है और भगवान के अटल-अविनाशी नियम को मानता है उसके हृदय में स्वाभाविक ही प्रसन्नता, निःस्वार्थता, नम्रता, सरलता, परदुःखकातरता आदि सद्गुण आ जाते हैं।

फलरूपा और रसरूपा भक्ति भगवद्रस ले आती है और जब भगवद्रस आता है तब भगवान के गुण भी स्वाभाविक ही आ जाते हैं। जैसे, सूर्योदय से पहले आकाश में लालिमा छा जाती है फिर सूर्य उदय होता है, ऐसे ही भगवद्दर्शन के पहले हृदय में भक्ति आती है और भगवान के गुण भी आ जाते हैं। भक्त के जीवन में अमानीत्व आ जाता है। ऑफिस में चाहे कोई कितना भी बड़ा साहब होकर, कुर्सी पर बैठकर कार्य करे लेकिन संतों की सभा में जाकर वह भी सरलता से जमीन पर बैठता है। अमानीत्व, अदांभित्व, सरलता, विनम्रता, परदुःखकातरता आदि सद्गुण सहज ही भक्त के जीवन में आ जाते हैं और इन सद्गुणों का रस भी उसके जीवन में आ जाता है।

कबीरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोई।
आप ठगे सुख उपजे, और ठगे दुःख होई॥

भक्त को बाहर से भले थोड़ा घाटा पड़े, फिर भी वह भीतर से दूसरे का हित करता है। ऐसा करने से बाहर की वस्तु भले थोड़ी कम हो जाये लेकिन भीतर की जो खुशी मिलती है, भीतर का जो बल बढ़ता है और भीतर का जो आनंद आता है उसे भक्त ही जानता है।

जो भक्ति के रास्ते चलते हैं उनकी कुटिलता हटती जाती है, सरलता बढ़ती जाती है, हिंसात्मक वृत्ति मिटती जाती है, अहिंसात्मक वृत्ति बढ़ती जाती है। हिंसा करना तमोगुण है, प्रतिहिंसा करना रजोगुण है, अहिंसा सत्त्वगुण है। भक्ति करने से सत्त्वगुण बढ़ता है।

भक्त कभी-कभार जरूरत पड़ने पर प्रतिक्रिया करता भी है लेकिन हिंसा की वृत्ति से नहीं, वरन् सामनेवाले की भलाई के लिये करता है, ताकि उसकी गलती दूर हो और वह सत्य की ओर चल पड़े।

भक्ति में यह ताकत है कि वह जीव को संसारी विषय-विकारों के सुख में नहीं, वरन् आत्मा-परमात्मा के सुख में पहुँचा देती है, परम सुखस्वरूप, परम रसस्वरूप परमात्मा के अनुभव में जगा देती है।

*

गुरुभक्त उद्धव

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

[गतांक का शेष...]

हनुमानजी से प्रार्थना करने पर भी गुरुदेव न पधारे तब एक दिन उद्धव ने प्रतिज्ञा की कि : ''अब तो जब तक गुरुदेव के दर्शन नहीं होंगे तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा ।'' गुरुदेव उस वक्त सज्जनगढ़ में थे । उद्धव के भक्तिभाव को देखकर हनुमानजी रात के ११ बजे प्रगट हुए एवं सज्जनगढ़ से समर्थ रामदासजी को रातोंरात जगाकर ले आये ।

गुरुदेव का आसरा सारी चिंता छोड़ ।
सद्गुरु दौड़े आयेंगे अपना आसन छोड़ ॥

गुरुदेव को प्रणाम व पूजादि करके उद्धव ने उपदेश के लिये प्रार्थना की । स्वामी रामदासजी ने उसे उपदेश दिया । थोड़े दिन टाकली गाँव में ही रहकर उसे दृढ़ आत्मानुभव कराया । उसके बाद वे पुनः सज्जनगढ़ पहुँच गये ।

समर्थ के सज्जनगढ़ से चले जाने के बाद उनके शिष्य कल्याण, शिवाजी वगैरह ने उनकी खूब खोज करायी थी किन्तु कहीं पता न लगने पर वे सब बड़े दुःखी हो गये थे ।

जब समर्थ वापस पधारे तब पूछने पर समर्थ ने बताया : ''उद्धव नामक मेरा एक परम प्रिय भक्त है । उसकी प्रार्थना से मैं अचानक ही उसके पास पहुँच गया था, अभी वहीं से आ रहा हूँ ।''

ऐसा कहकर उन्होंने उद्धव का सारा वृत्तांत सुनाया । सभी शिष्यों को उद्धव के दर्शन की इच्छा हुई । श्री समर्थ सद्गुरु ने उद्धव को सज्जनगढ़ बुलाया एवं सभी शिष्यों के साथ उसकी मुलाकात करायी । सभी को बड़ा आनंद हुआ ।

एक दिन समर्थ रामदासजी ने उद्धव को अपने ग्रंथ '**दासबोध**' पर व्याख्यान करने की आज्ञा दी । गुरु-आज्ञापालन करके उद्धव ने ऐसा सुन्दर, रसिक, हृदयस्पर्शी एवं सरल व्याख्यान किया कि उसे सुनकर सद्गुरु प्रसन्न हुए एवं उसे अपने सभी शिष्यों में प्रमुख स्थान देकर 'उद्धव स्वामी' नाम रखा । सज्जनगढ़ से टाकली वापस जाने की आज्ञा होने पर शिवाजी महाराज ने उद्धव स्वामी से कहा :

''मैं आपके टाकली मठ को पाँच गाँव भेंट में देता हूँ, स्वीकारने की कृपा करें ।''

तब अत्यंत नम्रता से उन्होंने अस्वीकार कर दिया । उद्धव स्वामी का वैराग्य बड़ा प्रखर था ।

टाकली लौटकर उद्धव स्वामी अपने नित्य कर्म में प्रवृत्त हो गये । इन महान् व्यक्ति के दिव्य जीवन को देखकर लोग स्वाभाविक ही उनकी ओर आकर्षित होने लगे एवं उपदेश देने की प्रार्थना करने लगे, किन्तु उद्धव स्वामी ने कहा : ''गुरु की आज्ञा के बिना मैं कभी भी उपदेश नहीं कर सकता ।''

एक दिन समर्थ रामदास स्वामी टाकली पधारे । एकादशी का दिन था । गुरुदर्शन करते ही उद्धव स्वामी का चित्त प्रसन्न हो गया । हर्षातिरेक से उनका रोम-रोम खिल उठा । सद्गुरु ने उद्धव स्वामी को आज्ञा दी कि : 'कीर्तन करो ।' गुरु-आज्ञानुसार उद्धव स्वामी ने हरिकीर्तन कराया । हनुमानजी भी वहाँ हाजिर थे । हरिकीर्तन करते-करते उद्धव स्वामी तो भावविभोर हो गये, लोग भी भावविभोर हो उठे एवं हनुमानजी भी कीर्तन करने लगे, कीर्तन में बाजा बजाने लगे । समर्थ रामदास, उद्धव स्वामी, हनुमानजी एवं पूरी सभा हरिकीर्तन में आनंदित हो उठी । घण्टों कीर्तन चला । कीर्तन के बाद गुरुदेव ने सत्संग के लिये उद्धव स्वामी को आज्ञा दी । उन १८ वर्ष के उद्धव स्वामी ने ज्ञान, भक्ति एवं योग के रहस्य बताये । ऐसी हृदयस्पर्शी कथा की कि जिससे लोगों को शांतात्मा, जितात्मा होने के लिये खूब प्रोत्साहन मिला ।

जैसी-तैसी कहानियाँ-वार्ताएँ सुनना अलग बात है परन्तु संत के, भगवद्भक्त के मुखारविंद से सत्संग सुनते-सुनते शांतात्मा होना, जितात्मा

होना एवं मन को परमात्मा में समाहित करना बहुत दुर्लभ है । ऐसा अवसर बड़ी मुश्किल से कभी-कभार ही मिलता है ।

समर्थ रामदास, उद्धव स्वामी एवं हनुमानजी इन विभूतियों की उपस्थिति में जिन्होंने कथा सुनी उनका चित्त भी शांतात्मा, जितात्मा हुआ । उनके संकल्प-विकल्प कम होने लगे, मन में शांति आने लगी । बाहर के सुख-वैभव के बदले आंतरिक सुख, अंतरात्मा का सुख उनके चित्त में प्रगट होने लगा । लोगों ने समर्थ रामदास से प्रार्थना की : ''भगवन् ! अब तो हमने उद्धव स्वामी को पहचान लिया एवं हनुमानजी के दर्शन भी हो गये । कृपा करके अब यहीं हमारे गाँव के आसपास के इलाके के उद्धार के लिये उद्धव स्वामी की नियुक्ति कर दीजिये ।''

समर्थ सहमत हुए । उद्धव स्वामी चारों ओर प्रसिद्ध हो गये एवं गुरु-आज्ञानुसार लोककल्याण के कार्य करने लगे ।

जहाँ उद्धव जैसा एक बालक पहुँच सकता है, गार्गी, मदालसा, शांडिली जैसी महिलाएँ पहुँच सकती हैं, सदना कसाई पहुँच सकता है, शबरी भीलन पहुँच सकती है वहाँ तुम क्यों नहीं पहुँच सकते ? अगर सच्ची और तीव्र इच्छा है तो इसी जन्म में परमात्मप्राप्ति । लक्ष्य तक पहुँचानेवाले उस रास्ते पर जानेवाले लोगों का संग होना चाहिए एवं जहाँ जाना है वहाँ पहुँचे हुए किन्हीं महापुरुष का मार्गदर्शन होना चाहिए । फिर तो पहुँचना आसान है... सरल है ।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

स्वामी सतरामदासजी महाराज

[गतांक का शेष...]

सलूशाह नामक पीर-फकीर की बात भी बहुत निराली है । वे थे तो उच्च कोटि के महापुरुष और बात-बात में आध्यात्मिकता के गूढ़ रहस्य बता देते जिसको कोई-कोई ही समझ पाता था, लेकिन स्वयं पूरे दिन भाँग और हुक्का पिया करते । सुबह से शाम तक भाँग घोटी जाती । वे इतनी भाँग पिया करते कि उनका भाँग छानने का कपड़ा सूख नहीं पाता और उन्हें वमन व दस्त होते रहते । सतरामदासजी बड़े प्रेम से उनके दस्त और वमन साफ करते । उनको सेवा करते देखकर उनके शिष्य भी साफ-सफाई में लग जाते । वे फकीर अपनी तोतली भाषा में साँईं सतरामदासजी को कहते कि :

''थाँईं थतराम ! थावी आवे ।''

(साँईं सतराम ! सावी (भाँग) आवे ।)

बस, उनके मुखारविंद से हुकुम निकलने मात्र की ही देर होती कि भाँग सामने रख दी जाती । अगर कभी भाँग लाने में थोड़ी देर हो जाती तो वे आगे रखा हुआ हुक्का फेंक देते थे । इसी तरह दिन में तीन-चार हुक्के तोड़ देते थे । उनकी ऐसी आदत को ध्यान में रखते हुए साँईं सतरामदासजी ने उनके लिये एक कोठी हुक्कों से भर रखी थी ताकि एक हुक्का तोड़ते ही दूसरा हुक्का लाने में विलम्ब न होने पाये ।

धन्य हैं सतरामदासजी जो न केवल संतों की सेवा ही करते थे अपितु उनके ऐसे नाज़-नखरे भी सहन करते थे । उनके क्रोध तक को अमृत समझते थे । बार-बार नमन है आपके श्रीचरणकमलों में !

मीरपुर माथेली परगना के ओवरसीअर श्री खानचंद साँईं सतरामदासजी के शिष्य थे । उन्हें अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा थी । वे थे तो हैदराबाद के निवासी लेकिन उनकी नौकरी रुड़की में थी । वे रोज

अपने गुरु के दरबार में जाते, सेवा करते। सतरामदासजी के साथ-साथ वे भी सलूशाह की सेवा करते थे। एक दिन खानचंद की बदली अपने ही शहर हैदराबाद के लिए हो गई। बदली का आदेश-पत्र देखकर वे दुःखी हो गये। वे अपने गुरु से दूर नहीं होना चाहते थे।

यां त पिरीं पचार या त ओरण पिरींअ सां।
बढ पया से डींहड़ा जे पिरीअं पचारुं धार॥

अर्थात्,

या दीदारे यार या हमहाली यार से।
आग लगे वा दिन को जो यार से दूर करे॥

श्री खानचंद बदली का आदेश-पत्र लेकर अपने गुरु साँईं सतरामदासजी के पास आये और उनको प्रार्थना की : ''साँईं ! कृपा करके मेरी बदली का आदेश रद्द करा दीजिए। मुझे अपने से दूर मत कीजिए।''

गुरुदेव दया कर दो मुझ पर, मुझे अपनी शरण में रहने दो...

सतरामदासजी ने श्री खानचंद से कहा :

''तुम्हारी बदली रद्द कराने के लिए मैं किसे कहूँ ? तुम सलूशाहजी के पास जाओ। वे ही तुम्हारा काम करेंगे।''

कितने अमानी होते हैं संत ! खुद शक्ति के धनी, रिद्धि-सिद्धि के मालिक... और सारा यश दूसरों को देते हैं।

गुरु की आज्ञा मानकर श्री खानचंदजी सलूशाहजी के पास आये। उन्हें देखते ही शाहजी ने कहा : ''खानू ! रोटी खिला, सावी पिला।''

फकीर साहेब की आज्ञानुसार उन्हें खाना खिलाया गया और भाँग पिला दी गई। खुश होकर शाहजी ने श्री खानचंद से कहा :

''खानू ! बदली दा कागर ला।''

संत लोग जान जाते हैं कि आनेवाला व्यक्ति उनके पास क्यों आया है।

श्री खानचंद ने अपनी जेब से बदली का आदेश-पत्र निकाला। शाहजी ने कोयले से उस पर लकीर खींच दी और उधर बदली का आदेश रद्द हो गया।

चंद घंटों के बाद श्री खानचंद के पास तार आया कि आपकी बदली का आदेश रद्द हो गया है।

ऐसी थी उस अलमस्त फकीर के संकल्प में ताकत ! जो पूरा दिन उल्टी और दस्त किया करते थे, उन्हीं फकीर ने यहाँ एक कोयले से लकीर खींच दी और वहाँ बदली का आदेश रद्द हो गया।

कहते हैं, एक दिन वे जंगल में सैर करने को निकले। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। अब जंगल में पानी आये कहाँ से ? मारे प्यास के उनके मुख से निकल गया कि : ''पाणी आवेरे पाणी।'' अर्थात् ''पानी आ रे पानी आ।'' जहाँ पर वे खड़े होकर पानी को बुला रहे थे वहीं से जल की एक धारा फूट निकली और पानी पीकर उन्होंने अपनी प्यास बुझाई। उन्होंने आशीर्वाद दिया : ''यहाँ हमेशा पानी बहता रहेगा।'' ...और हुआ भी वैसा ही। सरकार ने वहाँ शीघ्र ही तालाब खुदवाया और अब जंगल हरा-भरा रहने लगा। सच्चे संतों की सेवा में रिद्धि-सिद्धियाँ हमेशा हाज़िर रहती हैं।

साँईं सतरामदासजी के सत्संग में सत्संगियों की सेवा करनेवालों में तीर्थबाई नाम की एक माई थी। वह आश्रम में बड़े चाव से चाकरी करती थी। गरीब-निर्धन होने पर भी तन-मन-धन से सेवा खोज ही लेती थी। वह सत्संगियों को पानी पिलाने की सेवा करती थी। एक दिन संत सतरामदासजी ने प्रसन्न होकर पूछ लिया : ''क्या चाहिए ?''

माई ने झोली फैलायी। 'अच्छा... अच्छा...' कहते हुए उन्होंने अपनी कृपादृष्टि बरसायी। समय पाकर एक सत्पुरुष संत कँवरराम उस तीर्थबाई के घर अवतरित हुए। साँईं सतरामदासजी में विद्यमान करुणा-कृपा की शक्तियाँ भी लोक-मांगल्य और ईश्वर-आस्था से चलनेवालों को प्रोत्साहित करती थीं। सिंधी समाज साँईं सतरामदासजी के सपूत कँवरराम को पाकर अपने को धन्य मान रहा है और सत्प्रवृत्तियों में साँईं कँवरराम एवं साँईं सतरामदासजी के नाम आदर से जोड़े जाते हैं।

संत कँवरराम के कीर्तन, सत्संग और समाज-जागृति के दैवी कार्य के पीछे उनकी माँ की सेवा और गुरुदेव साँईं सतरामदासजी की कृपा-किरण ही काम कर रही थी। तप, तितिक्षा, आंतरिक जप और तात्त्विक समझ व्यक्ति को सबका सरताज बना देती है। बाहर से भाँग हो या वमन हो, भीतर से अपने शुद्ध-बुद्ध नारायण स्वभाव में सजाग सत्पुरुषों के चरणों में सत्य संकल्प-सामर्थ्य एवं रिद्धि-सिद्धियाँ हाजिर रहती हैं।

हम लोगों को अपने जीवन को उन्नत करने के लिए संतों के जीवन-चरित्र से उनकी भक्ति, तपस्या और शक्ति की कुंजी लेनी है, उनकी भाँग की नकल नहीं करनी है।

ॐ शांति... ॐ भक्ति... ॐ शक्ति... ॐ मुक्ति...

स्वामी सतरामदासजी प्राणिमात्र में ईश्वर का नूर देखते थे। संसार की मायाजाल से वे असंग एवं अलिप्त थे। उनके जीवन में एक दिन एक ऐसी घटना घटी जिससे संसार के प्रति उनकी अलिप्तता और प्राणिमात्र के प्रति उनकी एकात्मकता का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। हालाँकि घटना बिल्कुल सामान्य-सी थी लेकिन उस सामान्य घटना में भी उनके महान् गुण का दर्शन होता है।

स्वामी सतरामदासजी ने एक बिलाव पाल रखा था जो घर के सभी सदस्यों के साथ हिल-मिल गया था। सतरामदासजी उस बिलाव को रोज पेड़े खिलाते थे।

ऐसे ही रोज की भाँति एक दिन बिलाव को पेड़े खिला रहे थे कि इतने में उनका छोटा बेटा अमोलकदास, जो अभी बहुत छोटा था, बिलाव को देखकर आगे बढ़ा। बेटे के हाथ में पेड़े थे। बेटे को आते देख सतरामदासजी ने उसे वहीं रोक दिया और उसके हाथों से पेड़े लेकर बिलाव को खिला दिया। यह देखकर शिष्यों से चुप रहा नहीं गया। एक शिष्य ने हिम्मत करके पूछ ही लिया :

''स्वामीजी ! आपने अपने मासूम बेटे के हाथ से पेड़े लेकर बिलाव को क्यों खिला दिये ?''

स्वामी सतरामदासजी ने मुस्कराते हुए बहुत सुन्दर जवाब दिया : ''बेटे ! बिलाव को भी कम नहीं समझना चाहिए। उसमें भी वही ईश्वर है। ईश्वर प्राणिमात्र में बस रहा है। हर जीवात्मा में परमात्मा है। हर जीव-जन्तु में जगदीश्वर की ज्योत जगमगा रही है, उसको देखने के लिए केवल दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है।''

सब घट आत्मराम हैं, अँखियाँ सूझत नाँह।
'रोहल' सूझी तब पड़ी, जब सत्गुरु पकड़े बाँह॥

संतों के वचनों में शक्ति होती है। वे जो कहते हैं, कुदरत को उसका पालन करना पड़ता है। उनके मुख से निकली बात अमिट होती है। (क्रमशः)

निर्वासनिक बनें...

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

'हे रामजी ! बहुत शास्त्र और वेद मैं तुम्हें किसलिये सुनाऊँ और कहूँ ? वेदान्तशास्त्र का सिद्धांत यही है कि किसी भी प्रकार से वासना से रहित हो, इसीका नाम मोक्ष है। वासनासहित का नाम बंधन है।

हे रामजी ! जो निर्वासनिक हुआ है, उसका दर्शन पाने की सभी इच्छा करते हैं और दर्शन करके प्रसन्न होते हैं। जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्यमुखी खिल जाते हैं और उल्लास को प्राप्त होते हैं, वैसे ही उनका दर्शन करके सब आह्लादित होते हैं।'

जो निर्वासनिक हो गये हैं एवं जिन्होंने अपना-आपा, अपना वास्तविक स्वरूप जान लिया है उनको देखकर सब आनंदित होते हैं, उल्लसित होते हैं।

जो समदर्शी पुरुष हैं, जिन्होंने भगवान के साथ अपनी एकता का अनुभव कर लिया है, जो ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं, ऐसे महापुरुषों को देखकर

संसार के लोग भी आध्यात्मिक होने लगते हैं।

नानकजी ने कहा है :

ब्रहम गिआनी को खोजे महेश्वरु।
ब्रहम गिआनी आप परमेश्वरु ॥
ब्रहम गिआनी का कथिआ न जाइ आधा अख्खर।
ब्रहम गिआनी सरब का ठाकुरु ॥

जो ईश्वर को समर्पित होकर कर्म करता है उसको ईश्वर की प्रीति प्राप्त होती है और धीरे-धीरे ईश्वरत्व का ज्ञान हो जाता है। फिर उसको पता चलता है कि कई जन्मों तक संसार के लिये कर्म करता रहा- पति के लिये, पत्नी के लिये, पुत्र के लिये, अपने शरीरादि के लिये... किन्तु किया-कराया सब मृत्यु की झपेट में चौपट होता रहा। 'लखपति करोड़पति...' होकर आनंद ले लिया, आखिर क्या? जब तक अपने असली आनंद को नहीं जाना तब तक कितनी भी गाड़ियों में घूमे, कितना ही धन इकट्ठा कर लिया, आखिर क्या?

जिसका कर्म शुभ होता है, दान-पुण्य, जप-ध्यान, सेवा-साधना में जिसकी रुचि होती है उसकी बुद्धि शुद्ध होने लगती है एवं बुद्धि शुद्ध होते-होते वह आत्मा-परमात्मा को जानने में सफल हो जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। ऐसे पुरुष को देखकर संसारी लोग आह्लादित होते हैं, आनंदित होते हैं, उनसे सत्प्रेरणा पाते हैं एवं अपना जीवन धन्य बना लेते हैं।

यदि अपने आत्मतत्त्व को नहीं जाना तो बाकी का सब तो यहीं छोड़कर जाना है। कोई ज्यादा कमायेगा तो ज्यादा छोड़कर मरेगा, कोई कम कमायेगा तो कम छोड़कर मरेगा, लेकर तो कोई भी नहीं जायेगा। अतः मिले तो आत्मतत्त्व का ज्ञान मिले जो कभी बिछुड़ता नहीं है।

जेकर मिले त राम मिले, ब्यो सब मिल्यो त छा थ्यो ?
दुनिया में दिल जो मतलब, पूरो थियो त छा थ्यो ?

संसार की आसक्ति जितनी-जितनी मिटेगी और भगवान की प्रीति जितनी-जितनी बढ़ेगी, उतना-उतना मानव भीतर से महान् होगा। जितनी-जितनी आसक्ति बढ़ेगी, उतना-उतना वह भीतर से साधारण होता जायेगा। फिर उसकी आवश्यकताएँ बढ़ जायेंगी और उसे डर भी ज्यादा लगेगा। जितनी संसार की वासना ज्यादा, उतना भीतर से डरपोक रहेगा और जितनी ईश्वर की प्रीति ज्यादा, उतना भीतर से निर्भय रहेगा। जितना संसार से प्रेम करेगा, उतना भीतर से कमजोर होता जायेगा और जितना ईश्वर से प्रेम करेगा उतना भीतर से मजबूत होता जायेगा। अतः ऐसा प्रयत्न करें कि संसार की वासना कम हो जाये और भगवान की प्रीति बढ़ जाये।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''हे रामजी ! निर्वासनिक पुरुष उस सुख को प्राप्त होता है जिस सुख में त्रिलोकी के सारे सुख तृणवत् भासते हैं। हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, उसको सारी पृथ्वी गोपद के समान तुच्छ भासती है, मेरु पर्वत एक टूटे हुए वृक्ष के समान भासता है और सारी दिशाएँ डिब्बी के समान भासती हैं क्योंकि वह उत्तम पद को प्राप्त हुआ है। उसने जगत को तृणवत् जानकर त्याग दिया है और वह सदा आत्मतत्त्व में स्थित है, उसको फिर किसकी उपमा दीजिये ?''

जो आत्मतत्त्व में स्थित हैं उनको किसकी उपमा दें ? **तस्य तुलना केन जायते...** अपने आत्मा-परमात्मा का चिंतन एवं ध्यान करके, गुरुकृपा से जो जाग गये हैं उनके सुख और उनकी अनुभूति की तुलना किससे करोगे ?

''हे रामजी ! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईं ही दिखता है परन्तु हृदय से वह अद्भुत पद में स्थित रहता है और कभी-भी उससे नहीं गिरता है।''

ऐसे निर्वासनिक महापुरुषों की महिमा तो श्रीकृष्ण भी गाते हैं, श्रीरामजी भी गाते हैं, वशिष्ठजी भी गाते हैं। शास्त्र एवं उपनिषद् भी ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की महिमा से भरे हुए हैं।

वह शास्त्र, शास्त्र ही नहीं है जिसमें ब्रह्मज्ञान की महिमा नहीं है। वह तो केवल संसारी किताब है। कोई भी शास्त्र हो, उसमें ब्रह्मज्ञान की एवं ब्रह्मज्ञान को पाये हुए महापुरुष की महिमा अवश्य होगी- चाहे रामायण हो चाहे गीता हो, चाहे पुराण हों चाहे वेद हों। सब ब्रह्मज्ञान की महिमा से युक्त हैं और ब्रह्मज्ञान का विलक्षण आनंद प्रगट होता है वासनाक्षय, मनोनाश और परमात्मा को अपने आत्मरूप में जानने से।

'गहना कर्मणो गतिः'

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

कर्म की गति बड़ी गहन है ।

गहना कर्मणो गतिः ।

कर्म का तत्त्व भी जानना चाहिए, अकर्म का तत्त्व भी जानना चाहिए और विकर्म का तत्त्व भी जानना चाहिए । कर्म ऐसे करें कि कर्म दुष्कर्म न बनें, दूषित न बनें, बंधनकारक न बनें, वरन् ऐसे कर्म करें कि कर्म विकर्म में बदल जायें, कर्त्ता अकर्त्ता हो जाये और वह अपने परमात्म-पद को पा ले ।

अमदावाद में वासणा नामक एक इलाका है । वहाँ एक कार्यपालक इंजीनियर रहता था जो नहर का कार्यभार भी सँभालता था । वही आदेश देता था कि किस क्षेत्र में पानी देना है ।

एक बार एक किसान ने उसे १००-१०० रूपयों की दस नोटें एक लिफाफे में देते हुए कहा :

''साहब ! कुछ भी हो, पर फलाने व्यक्ति को पानी न मिले । मेरा इतना काम आप कर दीजिये ।''

साहब ने सोचा कि : 'हजार रूपये मेरे भाग्य में आनेवाले हैं इसीलिये यह दे रहा है । किन्तु गलत ढंग से रूपये लेकर मैं क्यों कर्मबंधन में पड़ूँ ? हजार रूपये आनेवाले होंगे तो कैसे भी करके आ जायेंगे । मैं गलत कर्म करके हजार रूपये क्यों लूँ ? मेरे अच्छे कर्मों से अपने-आप रूपये आ जायेंगे ।' अतः उसने हजार रूपये उस किसान को लौटा दिये ।

कुछ महीनों के बाद वह इंजीनियर एक बार मुंबई से लौट रहा था । मुंबई से एक व्यापारी का लड़का भी उसके साथ बैठा । वह लड़का सूरत आकर जल्दबाजी में उतर गया और अपनी अटैची गाड़ी में ही भूल गया । वह इंजीनियर समझ गया कि अटैची उसी लड़के की है । अमदावाद रेलवे स्टेशन पर गाड़ी रुकी । अटैची पड़ी थी लावारिस... उस इंजीनियर ने अटैची उठा ली और घर ले जाकर खोली । उसमें से पता और टेलीफोन नंबर लिया ।

इधर सूरत में व्यापारी का लड़का बड़ा परेशान हो रहा था कि : 'हीरे के व्यापारी के इतने रूपये थे, इतने लाख का कच्चा माल भी था । किसको बतायें ? बतायेंगे तब भी मुसीबत होगी ।' दूसरे दिन सुबह-सुबह फोन आया कि : ''आपकी अटैची ट्रेन में रह गयी थी जिसे मैं ले आया हूँ और मेरा यह पता है, आप इसे ले जाइये ।''

बाप-बेटे गाड़ी लेकर वासणा पहुँचे और साहब के बँगले पर पहुँचकर उन्होंने पूछा :

''साहब ! आपका फोन आया था ?''

साहब : ''आप तसल्ली रखें । आपके सभी सामान सुरक्षित हैं ।''

साहब ने अटैची दी । व्यापारी ने देखा कि अंदर सभी माल-सामान एवं रूपये ज्यों-के-त्यों हैं । 'ये साहब नहीं, भगवान हैं...' ऐसा सोचकर उसकी आँखों में आँसू आ गये, उसका दिल भर आया । उसने कोरे लिफाफे में कुछ रूपये रखे और साहब के पैरों पर रखकर हाथ जोड़ते हुए बोला :

''साहब ! फूल नहीं तो फूल की पंखुड़ी ही सही, हमारी इतनी सेवा जरूर स्वीकार करना ।''

साहब : ''एक हजार रूपये रखे हैं न ?''

व्यापारी : ''साहब ! आपको कैसे पता चला कि एक हजार रूपये हैं ?''

साहब : ''एक हजार रूपये मुझे मिल रहे थे बुरा कर्म करने के लिए । किन्तु मैंने वह बुरा कार्य नहीं किया यह सोचकर कि यदि हजार रूपये मेरे भाग्य में होंगे तो कैसे भी करके आयेंगे ।''

व्यापारी : ''साहब ! आप ठीक कहते हैं । इसमें हजार रूपये ही हैं ।''

जो लोग टेढ़े-मेढ़े रास्ते से कुछ ले लेते हैं वे तो दुष्कर्म कर पाप कमा लेते हैं लेकिन जो धीरज रखते हैं वे ईमानदारी से उतना पा ही लेते हैं जितना उनके भाग्य में होता है ।

श्रीकृष्ण कहते हैं : **गहना कर्मणो गतिः ।**

एक जाने-माने साधु ने मुझे यह घटना सुनायी थी :

बापूजी ! यहाँ गयाजी में एक बड़े अच्छे जाने-माने पंडित रहते थे। एक बार नेपालनरेश साधारण गरीब मारवाड़ी जैसे कपड़े पहनकर पंडितों के पीछे भटका कि : 'मेरे दादा का पिण्डदान करवा दो । मेरे पास पैसे बिल्कुल नहीं हैं। हाँ, थोड़े-से लड्डू लाया हूँ, वही दक्षिणा में दे सकूँगा।'

जो लोभी पंडित थे उन्होंने तो इन्कार कर दिया लेकिन यहाँ का जो जाना-माना पंडित था उसने कहा :

''भाई ! पैसे की तो कोई बात ही नहीं है। मैं पिण्डदान करवा देता हूँ।''

फटे-चिथड़े कपड़े पहनकर गरीब मारवाड़ी के वेश में छुपे हुए नेपालनरेश के दादा का पिण्डदान करवा दिया उस पंडित ने। पिण्डदान संपन्न होने के बाद उस नरेश ने कहा :

''पंडितजी ! पिण्डदान करवाने के बाद कुछ-न-कुछ दक्षिणा तो देनी चाहिए। मैं कुछ लड्डू लाया हूँ। मैं चला जाऊँ उसके बाद यह गठरी आप ही खोलेंगे, इतना वचन दे दीजिये।''

''अच्छा भाई ! तू गरीब है। तेरे लड्डू मैं खा लूँगा। वचन देता हूँ कि गठरी भी मैं ही खोलूँगा।''

गरीब जैसे वेश में छुपा हुआ नेपालनरेश चला गया। पंडित ने गठरी खोली तो उसमें से एक-एक किलो के सोने के उन्नीस लड्डू निकले !

वे पंडित अपने जीवनकाल में बड़े-बड़े धर्मकार्य करते रहे लेकिन सोने के वे लड्डू खर्च में आयें ही नहीं।

जो अच्छा कार्य करता है उसके पास अच्छे काम के लिये कहीं-न-कहीं से धन, वस्तुएँ अनायास आ ही जाती हैं। अतः उन्नीस किलो के सोने के लड्डू ऐसे ही पड़े रहे।

जब-जब हम कर्म करें तो कर्म को विकर्म में बदल दें अर्थात् कर्म का फल ईश्वर को अर्पित कर दें अथवा कर्म में से कर्त्तापन हटा दें तो कर्म करते हुए भी हो गया विकर्म। कर्म तो किये लेकिन कर्म का बंधन नहीं रहा।

संसारी आदमी कर्म को बंधनकारक बना देता है, साधक कर्म को विकर्म बनाता है लेकिन सिद्ध पुरुष कर्म को अकर्म बना देते हैं। रामजी युद्ध जैसा घोर कर्म करते हैं लेकिन अपनी ओर से युद्ध नहीं करते, रावण आमंत्रित करता है तब करते हैं। अतः उनका युद्ध जैसा घोर कर्म भी अकर्म में परिणत हो जाता है। आप भी कर्म करें तो अकर्त्ता होकर करें, न कि कर्त्ता होकर। कर्त्ता भाव से किया गया कर्म बंधन में डाल देता है एवं उसका फल भोगना ही पड़ता है।

राजस्थान में सुजानगढ़ के ढोंगरा गाँव की घटना है :

एक बकरे को देखकर ठकुराइन के मुँह में पानी आ गया एवं बोली : ''देखो जी ! यह बकरा कितना हृष्ट-पुष्ट है !''

बकरा पहुँच गया ठाकुर किशन सिंह के घर एवं हलाल होकर उसके पेट में भी पहुँच गया।

बारह महीने के बाद ठाकुर किशन सिंह के घर बेटे का जन्म हुआ। बेटे का नाम बाल सिंह रखा गया। बाल सिंह तेरह साल का हुआ तो उसकी मँगनी भी हो गयी एवं चौदहवाँ पूरा होते-होते शादी की तैयारी भी हो गयी।

शादी के वक्त ब्राह्मण ने गणेश-पूजन के लिये उसको बिठाया किन्तु यह क्या ! ब्राह्मण विधि शुरू करे उसके पहले ही लड़के ने पैर पसारे और लेट गया। ब्राह्मण ने पूछा :

''क्या हुआ... क्या हुआ ?''

कोई जवाब नहीं । माँ रोयी, बाप रोया । अड़ोस-पड़ोस के लोग आये, सारे बाराती इकट्ठे हो गये। पूछने लगे कि : ''क्या हुआ ?''

लड़का : ''कुछ नहीं हुआ है। अब तुम्हारा-मेरा लेखा-जोखा पूरा हो गया है।''

पिता : ''वह कैसे, बेटा ?''

लड़का : ''बकरियों को गर्भाधान कराने के लिये उदरासर के चारण कुँअरदान ने जो बकरा छोड़ रखा था, वही बकरा तुम ठकुराइन के कहने पर उठा लाये थे। वही बकरा तुम्हारे पेट में पहुँचा और समय पाकर तुम्हारा बेटा होकर पैदा हुआ। वह बेटा लेना-देना पूरा करके अब जा रहा है। राम-राम...''

बकरे की काया से आया हुआ बाल सिंह तो

रवाना हो गया किन्तु किशन सिंह सिर कूटते रह गये।

तुलसीदासजी कहते हैं :

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥

(श्रीरामचरित० अयो० : २१८.२)

बुरा कर्म करते समय तो आदमी कर डालता है लेकिन बाद में उसका कितना भयंकर परिणाम आता है इसका पता ही नहीं चलता उस बेचारे को।

जैसे चौदह साल के बाद भी दुष्कृत्य कर्त्ता को फल दे देता है, ऐसे ही सुकृत भी भगवद्प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाले कर्त्ता के अंतःकरण को भगवद्ज्ञान, भगवद्आनंद एवं भगवद्जिज्ञासा से भरकर भगवान का साक्षात्कार करा देता है।

पर्व मांगल्य

अनोखी दक्षिणा

[संत ज्ञानेश्वर महाराज पुण्यतिथि : २३ नवम्बर २०००]

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात।
त्यों संतन की बात में, बात-बात में बात ॥

संत-महापुरुषों के वचन बड़े गूढ़ एवं रहस्यमय होते हैं।

संत ज्ञानेश्वर की कीर्ति सुनकर १४०० साल के चाँगदेव के मन में उनसे मिलने की इच्छा हुई। एक दिन चाँगदेव अपने अनेक शिष्यों को लेकर, एक बड़े शेर पर सवार हो हाथ में साँप का चाबुक लिये आलंदी पहुँचे।

उस समय संत ज्ञानेश्वर अपने भाई-बहन के साथ एक चबूतरे पर बैठे थे। चाँगदेव की शेर की सवारी का वैसा ही उत्तर देने के लिये संत ज्ञानेश्वर ने चबूतरे को ही चलने की आज्ञा दे दी। चबूतरे को चलता देखकर १४०० साल के चाँगदेवजी की सिद्धि का अहंकार चूर-चूर हो गया। शेर की सवारी से नीचे उतरकर वे २१ वर्षीय संत ज्ञानेश्वर के चरणों में गिर पड़े एवं उनसे आत्मज्ञान देने की प्रार्थना करने लगे।

संत ज्ञानेश्वर : ''आपके इन शिष्यों में से यदि कोई एक भी अपनी बलि देने को तैयार हो तो आपको आत्मज्ञान मिल सकता है।''

बलि देने की बात सुनकर सब शिष्य घबरा गये एवं एक-एक करके वहाँ से रवाना हो गये। वे शिष्य केवल चाँगदेवजी की चाटुकारिता में ही लगे

थे। जब तक अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलती रहीं, तब तक चाँगदेवजी की जी-हजूरी करते रहे और बलि देने की बात आई तब सब भाग खड़े हुए कि : 'कहीं हमारा नंबर न लग जाये !'

इससे चाँगदेवजी का गुरुत्व का अहंकार भी चूर हो गया और वे बोले : ''मैं ही आपका शिष्य हूँ और बलि देने को तैयार हूँ।''

संत ज्ञानेश्वर : ''मुझे वास्तव में किसीका बाहर का सिर नहीं चाहिए लेकिन यह जो अहंकार है कि : 'मैं बड़ा योगी हूँ... मेरे इतने शिष्य हैं...' यह अहंकार ही आत्मविद्या पाने में अड़चन पैदा करता है। मुझे तो यही अहंकाररूपी सिर चाहिए।

१४०० वर्ष की आयु भी तुम्हारी नहीं, शरीर की है और यह शरीर तो एक दिन मरनेवाला ही है। आश्रम, शिष्य आदि सब छूटनेवाली चीजें हैं। उन्हें 'मैं-मेरा' मानकर कब तक आसक्ति करते रहोगे ? यह सब तुम्हारा नहीं है लेकिन सब जिसका है वह परमात्मा तुम्हारा है, तुम उसके हो... केवल यह ज्ञान ही पाने योग्य है।''

कैसे होते हैं संत ज्ञानेश्वरस्वरूप सद्गुरु ! सद्गुरु न जाने कैसी-कैसी युक्ति अपनाते हैं ताकि शिष्य का अहं दूर हो जाये एवं वह अपने आत्मस्वरूप में जाग जाये ! प्रणाम हैं ऐसे श्री ज्ञानेश्वरस्वरूप सद्गुरु के श्रीचरणों में !

*

यह पक्की गाँठ बाँध लो कि जो कुछ हो रहा है, चाहे अभी तुम्हारी समझ में न आये और बुद्धि स्वीकार न करे तो भी परमात्मा का वह मंगलमय विधान है। वह तुम्हारे मंगल के लिए ही सब करता है। परम मंगल करनेवाले परमात्मा को बार-बार धन्यवाद देते जाओ... प्यार करते जाओ... और अपनी जीवन- नैया जीवनदाता की ओर बढ़ाते जाओ।
(आश्रम की 'जीवन विकास' पुस्तक से)

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

यदि आग बुझानी ही है तो...

एक सेठ अपने कुछ साथियों के साथ 'लक्ज़री बस' में तीर्थयात्रा के लिये निकला। जंगल में एक जगह सेठ ने अपने रसोइये से कहा :

''हम पहाड़ पर स्थित मंदिर में जाकर आते हैं। आने-जाने में हमें २-३ घंटे लग जायेंगे। तब तक तुम यहाँ रसोई बनाकर रखना। लेकिन ध्यान रहे कि आग जंगल को न पकड़े। देशवासियों के लिये देश की संपत्ति का सदुपयोग होना चाहिए। किसीका नुकसान न हो, इसलिए आग जलाकर भोजन बनाना लेकिन बाद में सावधानीपूर्वक ठीक से आग बुझा भी देना। देखो, इधर-उधर गपशप मत लगाना। एक भी चिनगारी इधर-उधर गयी तो जंगल में आग लग सकती है। अतः आग बुझाकर ही कहीं जाना। अगर आग बुझी हुई न होगी तो मैं तुम्हारी खबर ले लूँगा।''

इतना कहकर सेठ चल दिये। मंदिर वगैरह देखकर २ घंटे बाद सेठ आये और रसोइये से बोले :

''चलो, भोजन ले आओ।''

''भोजन बना ही नहीं है।''

''क्यों नहीं बनाया भोजन ?''

''हमने आग जलाई ही नहीं।''

''क्यों नहीं जलाई आग ?''

''सेठजी ! आपने ही तो कहा था कि आग बुझा देना। जब आग को बुझा ही देना है तो जलायें ही क्यों ?''

तब सेठ ने कहा : ''अरे मूर्ख ! जितना आग

बुझाना जरूरी है, उतना ही आग जलाना भी जरूरी है ।''

संसार में जितनी सफलता और उपलब्धियों की जिज्ञासा करके संसार की चीजें पाना जरूरी है, उतनी ही उनकी आसक्ति मिटाकर अपने-आपमें जागना भी जरूरी है ।

'यह संसार मिथ्या है अतः अपने-आपमें जागें...' यह तो ठीक है किन्तु अपने-आपमें जागने की जिज्ञासा ही न हो और 'संसार मिथ्या है...' ऐसा करके आलसी-पलायनवादी बन गये तो काम नहीं चलेगा ।

युद्ध के समय अर्जुन कहता है : ''मैं अनासक्ति के कारण संन्यास लेने जा रहा हूँ ।''

तब श्रीकृष्ण कहते हैं : ''नहीं, अगर अनासक्ति की ऊँचाई होती तो तुम युद्ध से पहले ही साधु बन गये होते । अभी तो तुम मोह के कारण कर्म का त्याग कर रहे हो ।''

यदि पलायनवादिता का दुर्गुण मन में घुस जाय तो संन्यासी होने से भी क्या मिलेगा ? वहाँ भी रोटी खाकर 'जय-जय सियाराम...' करके बैठ जायेगा । जो जिज्ञासु होगा वही संन्यास का सही लाभ ले पायेगा । जो जितना जिज्ञासु होगा, जितना तत्पर होगा वह उतने अंश में उस क्षेत्र में आगे बढ़ सकेगा ।

*

खीर खाता है कि डंडा...

एक सेठ व्यंजनों के बड़े शौकीन थे । एक दिन उन्होंने अपने नौकर को रबड़ी जैसी खीर बनाने के लिये केसर, पिस्ता, काजू, बादाम आदि देते हुए कहा : ''बढ़िया खीर बनाकर रखना । मैं अभी घूमकर आता हूँ ।''

यह कहकर सेठ घूमने के लिये निकल पड़े । रास्ते में उन्हें एक मित्र मिल गये । सेठ ने पूछा :

''कहाँ जा रहे हो ?''

मित्र : ''शादी की पार्टी का निमंत्रण मिला है, उसमें जा रहा हूँ । चलना हो तो चलो ।''

व्यंजनों के शौकीन सेठ ने 'हाँ' कह दिया । खाने -पीने का शौकीन तो था ही और शादी में तो एक से बढ़कर एक चीजें होती हैं । सेठ गले तक खाकर घर वापस आया । घर पर स्वादिष्ट खीर तैयार थी किन्तु पेट में जगह हो तो खाये न !

सेठ ने सोचा : 'यदि नौकर से कहूँगा कि भरपेट खाकर आया हूँ तो सारी खीर वही चट कर जायेगा ।' सेठ ने युक्ति लड़ायी और कहा :

''अभी खीर खाने की इच्छा नहीं है । चलो, अभी सो जाते हैं । रात को जिसका स्वप्न सुन्दर होगा, वही सुबह खीर खायेगा ।''

सुबह हुई । दोनों उठे । सेठ ने कहा : ''लाओ, खीर ।''

नौकर : ''सेठजी ! पहले अपना स्वप्न तो सुनाइये !''

सेठ : ''अरे ! खीर तो मुझे ही मिलेगी क्योंकि मेरे से सुन्दर स्वप्न तो तू देख ही नहीं सकता । इसलिए खीर ले आ और मुझे खाने दे ।''

नौकर : ''सेठजी ! पहले स्वप्न तो सुनाइये ।''

सेठ ने कल्पना दौड़ाते हुए कहा : ''मैं सपने में भारत का सम्राट बन गया था । इन्द्र को जैसे ही इस बात का पता चला तो वे मुझे इन्द्रपुरी का मेहमान बनाकर ले गये । वहाँ मुझे सुन्दर भोजन करवाया । इन्द्राणी स्वयं पंखा हाँक रही थीं एवं इन्द्र मेरे मुँह में कौर डाल रहे थे । इतना ही नहीं, जब इस बात का पता भगवान विष्णु को चला तो वे भी मेहमाननवाज़ी के लिये मुझे अपने वैकुण्ठ में ले गये । फिर शंकरजी भी मुझे कैलास ले गये । वहाँ माता पार्वती ने भोजन करवाया और शिवजी ने अपने पास बिठाया । ऐसा स्वप्न तू तो क्या, तेरे बाप-दादा व तेरी २१ पीढ़ी के लोग भी नहीं देख सकते । लाओ, खीर ।''

नौकर : ''सेठजी ! मेरा भी स्वप्न सुनिये । रात्रि को सपने में मेरे गुरुजी आये । बड़ी-बड़ी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी आँखें... डंडा दिखाते हुए उन्होंने कहा : 'बेवकूफ कहीं के ! खीर वहाँ खराब हो रही है और नींद यहाँ खराब हो रही है । चल, उठ और जाकर खीर खा, नहीं तो डंडा लगाऊँगा ।'

मैं कुछ देर चुप रहा । फिर गुरुजी ने लाल-लाल आँखें दिखाते हुए कहा : 'मूर्ख कहीं के ! खीर

खाता है कि डंडा ? बोल।'

मैंने डर के मारे खीर खाना कबूल कर लिया। मैं तुरन्त गया रसोईघर में और खीर खाने लगा... मजेदार, स्वादिष्ट खीर... ऐसी खीर मैंने जिंदगी में पहली बार खायी... अहाहा ! कितनी मधुर... रसदार... बादाम-पिस्ता-काजू-केसर डली हुई... मैंने स्वाद ले-लेकर खायी। फिर पतीली माँज-धोकर रख दी। वह देखो पतीली, चम-चम चमक रही है...''

सेठजी : ''यह तुम्हारा स्वप्न था कि हकीकत ?''

''स्वप्न नहीं, हकीकत ही थी।''

''यह कैसे संभव हुआ ?''

''मैंने गुरु बना रखे हैं। उन्होंने ही मुझे ऐसा करने के लिये कहा।''

''उस वक्त मुझे क्यों नहीं बुलाया ?''

''उस वक्त आप तो सम्राट बने हुए थे। वहाँ मुझ गरीब को कोई आने नहीं देता क्योंकि आपकी सुरक्षा कड़ी थी, 'सिक्योरिटी टाइट' थी। ...और बाद में इन्द्रपुरी में, वैकुण्ठ में, कैलास में मेहमाननवाज़ी मना रहे थे। मैं गरीब नौकर भला वहाँ कैसे पहुँचता ? आपको इन्द्रपुरी में इन्द्र की मेहमाननवाज़ी मुबारक हो ! विष्णुजी एवं शिवजी की मेहमाननवाज़ी मुबारक हो ! मैंने तो यहीं पर खीर खाकर अपनी भूख मिटा ली।''

इस कहानी से यह बोध लेना है कि वर्त्तमान में जियो, भविष्य में स्वर्ग की कल्पना छोड़ो। 'कोई हमें स्वर्ग में ले जायेगा या भेज देगा...' इस कल्पना को छोड़कर वर्त्तमान में ही आत्मा-परमात्मा की खीर खाना सीख लो जिस आत्मिक सुख के आगे स्वर्ग भी तुच्छ हो जाता है तो स्वादलोलुपता का क्या महत्त्व ?

जब तक आत्मरस का स्वाद नहीं चखा, तभी तक बाह्य जगत की स्वादलोलुपता इन्द्रियों को अपने वश में करती रहती है। जब भीतर से आत्मरस का, परमात्मरस का स्वाद आ जाता है तब बाहर के सारे रस तुच्छ हो जाते हैं।

*

नेपोलियन की सच्चाई

संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से

किसीने कहा है :

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप॥

'सत्य के समान कोई तप नहीं है। झूठ के समान कोई पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में परमात्मा स्वयं निवास करते हैं।'

अपने बाल्यकाल में एक बार नेपोलियन अपनी दोनों बहनों इला एवं इजा के साथ घूमने के लिये निकला। रास्ते में सामने से अंगूर बेचनेवाली एक गरीब लड़की आ रही थी। इन खेलते-कूदते बच्चों से उस लड़की को धक्का लग गया और उसके सारे अंगूर जमीन पर गिर पड़े। यह देखकर वह बेचारी अंगूर बेचनेवाली लड़की रोने लगी :

''हाय ! अब आज हम क्या खायेंगे ? मेरी तो रोजी-रोटी ही चली गयी...''

नेपोलियन की बहनें कहने लगीं :

''नेपोलियन ! चलो, हम भाग चलते हैं।''

नेपोलियन : ''नहीं, इस बेचारी के अंगूर गिर गये और हम भाग जायें ! यह कैसे हो सकता है ?''

बहनें : ''किन्तु यह तो अपने पैसे माँग रही है ?''

नेपोलियन : ''हमारे कारण उसके अंगूर गिर गये और उसे नुकसान हुआ है अतः हमें उसके पैसे देने चाहिए।''

बहनें : ''पैसे तो हमारे पास नहीं हैं।''

नेपोलियन ने उस अंगूरवाली से कहा :

''बहन ! मेरे पास केवल तीन सिक्के हैं। लो, इसे रख लो।''

अंगूरवाली : ''तीन सिक्के से क्या होगा ? मेरे माँ-बाप आज मुझे निश्चय ही मारेंगे।''

नेपोलियन : ''ये तीन सिक्के तो रख और तू

भी हमारे साथ घर चल। मैं अपनी माँ से तुझे तेरे पूरे पैसे दिलवा दूँगा।''

बहनों ने कहा : ''नेपोलियन! माँ हमें मारेगी।''

नेपोलियन : ''माँ हमें मारेगी तो हम मार सहन कर लेंगे लेकिन इस बेचारी गरीब ने हमारा क्या बिगाड़ा था ? हमने उसका नुकसान किया है अतः हमें उसके साथ कपट नहीं करना चाहिए। ऊपरवाला (गॉड) सब देखता है न!''

नेपोलियन उस अंगूरवाली को लेकर घर गया। मार्ग की सारी घटना बताते हुए उसने माँ से कहा :

''माँ! इस लड़की को इसके पूरे पैसे देने की कृपा करो।''

माँ नाराज हो गई। माँ को नाराज होते देखकर नेपोलियन ने पुनः कहा : ''माँ! अपराध तो हमने किया है, उसमें इस बेचारी का क्या कसूर है ? माँ! तुम चाहो तो मेरा जेबखर्च काट लेना, मुझे मारना हो तो मार लेना लेकिन इस गरीब लड़की के पेट पर लात मत मार। माँ! इसे तुम पूरे पैसे चुका दो।''

माँ : ''ठीक है। इस लड़की को मैं पूरे पैसे दे देती हूँ लेकिन फिर तुझे डेढ़ महीने तक जेबखर्च नहीं दूँगी।''

नेपोलियन : ''माँ! मुझे मंजूर है।''

माँ ने उस अंगूरवाली के पूरे पैसे चुका दिये। अपने डेढ़ महीने का जेबखर्च कटवाकर भी नेपोलियन ने उस अंगूरवाली गरीब लड़की के पैसे चुका दिये।

विद्याध्ययन काल में नेपोलियन जिसके घर में रहता था उस घर की युवती सुंदरी ने नाज़-नखरे करके हजार-हजार उपाय किये उसे काम-विकार में गिराने को लेकिन वह 'सेक्स' में सड़ा नहीं, विकारों में गिरा नहीं। उसने दृढ़ता से ब्रह्मचर्य का पालन किया। संयम का यह भारी गुण उसमें था।

सज्जनता और सच्चाई इन दो गुणों के साथ तीसरा महान् गुण था उसमें संयम का। ऐसे व्यक्ति को अगर ब्रह्मज्ञानी गुरु मिलते तो वह बुद्ध, विवेकानंद या ईसा की नांई महात्मा हो जाता।

ऐसे ही कोई नेपोलियन नहीं बनता। नेपोलियन में बाल्यकाल से ही सच्चाई एवं सज्जनता का गुण विद्यमान था, तभी वह आगे जाकर इतना महान् बन सका। आप भी यदि सच्चाई, सज्जनता और संयम-इन तीन गुणों को अपना लो तो महान् बन सकते हो।

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

एकाग्रता का रहस्य

स्वामी विवेकानंद हृषिकेश के बाद मेरठ आये। अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिये विश्राम हेतु वे मेरठ में रुके।

विवेकानंदजी को अध्ययन का अत्यंत शौक था। अध्यात्म एवं दर्शनशास्त्र की पुस्तकें वे बड़े चाव से पढ़ते थे। उनके एक शिष्य अखंडानंदजी उनके लिए स्थानीय पुस्तकालय से पुस्तकें ले आया करते थे।

एक बार विवेकानंदजी ने प्रसिद्ध विचारक एवं दार्शनिक सर जॉन लबाक की पुस्तकें पढ़ने हेतु मँगवायीं। उन्होंने एक ही दिन में सब पुस्तकें पढ़ लीं। दूसरे दिन अखंडानंदजी वे पुस्तकें जमा करवाने ले गये तब ग्रंथपाल को विस्मय हुआ क्योंकि पिछले कई दिनों से अखंडानंदजी बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ने के लिये ले जाते एवं दूसरे दिन पुनः जमा करवा देते। ग्रंथपाल ने अखंडानंदजी से पूछा :

''महाशय! आप पुस्तकें पढ़ते हैं या केवल उनके पन्ने पलटकर ही वापस कर देते हैं ? प्रतिदिन मुझसे अलग-अलग पुस्तकें ढूँढ़वाकर मेरा दम निकाल देते हैं।''

यह बात स्वामी विवेकानंदजी के पास पहुँची तब वे स्वयं पुस्तकालय में आये एवं उन्होंने विनम्रतापूर्वक ग्रंथपाल से कहा :

''अखंडानंदजी प्रतिदिन मेरे लिये पुस्तकें

लाते हैं। मैं पुस्तकें पूरी-की-पूरी पढ़कर दूसरे दिन उन्हें जमा कराने के लिए वापस भेजता हूँ। क्या आपको शंका होती है कि मैं पढ़े बिना ही पुस्तकें वापस भेजता हूँ ?''

ग्रंथपाल ने कहा :

''स्वामीजी ! सर जॉन लबाक जैसे गहन तत्त्वचिंतक की पुस्तकें एक ही दिन में कैसे पढ़ी जा सकती हैं ? इसे मैं नहीं मानता।''

स्वामी विवेकानंदजी ने कहा :

''मैंने एक ही दिन में वे सब पुस्तकें पढ़ डाली है फिर भी आपको शंका हो तो उनकी पुस्तकों में से चाहे जिस विषय पर मुझसे कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं।''

ग्रंथपाल के दिमाग में यह बात नहीं उतर पाई। विवेकानंदजी वास्तव में पुस्तकें पढ़ते हैं कि नहीं, इसकी जाँच करने के लिये ग्रंथपाल उन पुस्तकों में से एक के बाद एक प्रश्न पूछने लगा।

विवेकानंदजी फटाफट उनके उत्तर देने लगे। इतना ही नहीं, प्रश्न का उत्तर पुस्तक के किस पृष्ठ पर है, यह भी बताने लगे।

ग्रंथपाल उन्हें फटी आँखों देखता रह गया ! वह अत्यंत आश्चर्य में डूब गया ! विवेकानंदजी की मेधावी स्मृतिशक्ति एवं उनके ज्ञान के प्रति उसे असीम श्रद्धा हुई। उसने प्रणाम करके कहा :

''स्वामीजी ! आपकी बात को सत्य माने बिना आपके साथ मैंने जो संशययुक्त व्यवहार किया, उसके बदले में क्षमा माँगता हूँ। वास्तव में आप कोई महान् योगी पुरुष हैं... परन्तु मुझे यह समझाइये कि इतनी शीघ्रता से पुस्तकें पढ़कर उसे आप अक्षरशः याद कैसे रख लेते हैं ?''

विवेकानंदजी ने कहा :

''यह तो बिल्कुल सामान्य बात है। छोटा बालक पहले एक-एक अक्षर अलग-अलग करके पढ़ता है। फिर समझदार होता है तब पूरे शब्द पढ़ता है। बाद में पूरे वाक्य फटाफट पढ़ लेता है।

पढ़ा हुआ पाठ याद रखने के लिये एकाग्रता की आवश्यकता है। एकाग्रता प्राप्त करने के लिये इन्द्रियसंयम चाहिए। संयम न हो तो मन की शक्तियाँ बिखर जाती हैं और इन सबकी नींव में सबसे महत्त्वपूर्ण साधना है ब्रह्मचर्य। भैया ! यह सब ब्रह्मचर्य से ही संभव बनता है। आपको मेरी स्मरणशक्ति चमत्कारिक लगती है परन्तु इसमें कुछ भी चमत्कारिक नहीं है। यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रताप है। इसका पूरा यश ब्रह्मचर्य को ही जाता है।''

विवेकानंदजी की बात सुनकर ग्रंथपाल के हृदय में उनके प्रति अहोभाव जाग उठा। वह स्वामीजी के चरणों में नतमस्तक होकर उनका भक्त बन गया।

*

वाममार्ग और भ्रष्टाचार

हमारे देश के युवावर्ग को एक ओर तो तथाकथित मनोचिकित्सक गुमराह कर उसे संयम-सदाचार और ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट करके अनियंत्रित विकारों के शिकार बना रहे हैं तो दूसरी ओर कुछ तथाकथित विद्वान् वाममार्ग का सही अर्थ न समझ सकने के कारण स्वयं तो दिग्भ्रमित हैं ही, साथ ही उसके आधार पर 'संभोग से समाधि' की ओर ले जाने के नाम पर युवानों को पागलपन और महाविनाश की ओर ले जा रहे हैं। इन सबसे समाज व राष्ट्र को भारी नुकसान पहुँच रहा है। कोई भी दिग्भ्रमित व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता, उसका पतन निश्चित है। अतः समाज को सही मार्गदर्शन की नितांत आवश्यकता है।

आज कल तंत्रतत्त्व से अनभिज्ञ जनता में वाममार्ग को लेकर एक भ्रम उत्पन्न हो गया है। वास्तव में प्रज्ञावान् प्रशस्य योगी का नाम 'वाम' है और उस योगी के मार्ग का नाम ही 'वाममार्ग' है। अतः वाममार्ग अत्यंत कठिन है और योगियों के लिए भी अगम्य है तो फिर इन्द्रियलोलुप लोगों के लिए वह कैसे गम्य हो सकता है ? वाममार्ग जितेन्द्रिय के लिए है और जितेन्द्रिय योगी ही होते हैं।

वाममार्ग उपासना में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन- ये पाँच आध्यात्मिक मकार जितेन्द्रिय,

प्रज्ञावान् योगियों के लिए ही प्रशस्य हैं क्योंकि इनकी भाषा सांकेतिक है जिसे संयमी एवं विवेकी व्यक्ति ही ठीक-ठीक समझ सकता है।

(१) मद्य : शिव-शक्ति के संयोग से जो महान् अमृतत्व उत्पन्न होता है उसे ही 'मद्य' कहा गया है अर्थात् योगसाधना द्वारा निरंजन, निर्विकार, सच्चिदानंद परब्रह्म में विलय होने पर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे 'मद्य' कहते हैं और ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रपद्मदल से जो अमृतत्व स्रावित होता है उसका पान करना ही 'मद्यपान' है। यदि इस सुरा का पान नहीं किया जाता अर्थात् अहंकार का नाश नहीं किया जाता तो सौ कल्पों में भी ईश्वरदर्शन करना असंभव है। 'तंत्रतत्त्वप्रकाश' में आया है कि : ''जो सुरा सहस्रार कमलरूपी पात्र में भरी है और चंद्रमा-कला-सुधा से स्रावित है वही पीने योग्य सुरा है। इसका प्रभाव ऐसा है कि यह सब प्रकार के अशुभ कर्मों को नष्ट कर देती है। इसी के प्रभाव से परमार्थकुशल ज्ञानियों-मुनियों ने मुक्तिरूपी फल प्राप्त किया है।''

(२) मांस : विवेकरूपी तलवार से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पाशवी वृत्तियों का संहार कर उनका भक्षण करने को ही 'मांस' कहा गया है। जो इनका भक्षण करे एवं दूसरों को सुख पहुँचाये, वही सच्चा बुद्धिमान् है। ऐसे ज्ञानी और पुण्यशील पुरुष ही पृथ्वी पर के देवता कहे जाते हैं। ऐसे सज्जन कभी पशुमांस का भक्षण करके पापी नहीं बनते बल्कि दूसरे प्राणियों को सुख देनेवाले निर्विषय तत्त्व का भक्षण करते हैं।

आलंकारिक रूप से यह आत्मशुद्धि का उपदेश है अर्थात् कुविचारों, पाप-तापों, कषाय-कल्मषों से बचने का उपदेश है। किन्तु पशुलोलुपों ने अर्थ का अनर्थ कर उपासना के अतिरिक्त हवन-यज्ञों में भी पशुवध प्रारंभ कर दिया था।

(३) मत्स्य : अहंकार, दम्भ, मद, मत्सर, द्वेष, चुगलखोरी- इन छः मछलियों को विषय-विरागरूपी जाल में फँसाकर सद्‌विद्यारूपी अग्नि में पकाकर इनका सदुपयोग करने को ही 'मीन' या 'मत्स्य' कहा गया है अर्थात् इन्द्रियों का वशीकरण, दोषों तथा दुर्गुणों का त्याग, साम्यभाव की सिद्धि और योगसाधन में रत रहना ही 'मीन' या 'मत्स्य' ग्रहण करना है। इनका सांकेतिक अर्थ न समझकर प्रत्यक्ष मत्स्य के द्वारा पूजन करना तो अर्थ का अनर्थ होगा और साधना-क्षेत्र में एक कुप्रवृत्ति को बढ़ावा देना होगा।

जल में रहनेवाली मछलियों को खाना तो सर्वथा धर्मविरुद्ध है, पापकर्म है। दो मत्स्य गंगा-यमुना के भीतर सदा विचरण करते रहते हैं। गंगा-यमुना से आशय है मानव शरीरस्थ इड़ा-पिंगला नाड़ी का। उनमें निरन्तर बहनेवाले श्वास-प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं। जो साधक प्राणायाम द्वारा इन श्वास-प्रश्वासों को रोककर कुंभक करते हैं वे ही यथार्थ में मत्स्य साधक हैं।

(४) मुद्रा : आशा, तृष्णा, निंदा, भय, घृणा, घमंड, लज्जा, क्रोध- इन आठ कष्टदायक मुद्राओं को त्यागकर ज्ञान की ज्योति से अपने अन्तर को जगमगानेवाला ही 'मुद्रा साधक' कहा जाता है। सत्कर्म में निरत पुरुषों को इन मुद्राओं को ब्रह्मरूप अग्नि में पका डालना चाहिए। दिव्य भावानुरागी सज्जनों को सदैव इनका सेवन करना चाहिए और इनका सार ग्रहण करना चाहिए। पशुहत्या से विरत ऐसे साधक ही पृथ्वी पर शिव के तुल्य उच्च आसन प्राप्त करते हैं।

(५) मैथुन : 'मैथुन' का सांकेतिक अर्थ है मूलाधार चक्र में स्थित सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति का जागृत होकर सहस्रार चक्र में स्थित शिवतत्त्व (परम ब्रह्म) के साथ संयोग अर्थात् पराशक्ति के साथ आत्मा के विलास रस में निमग्न रहना ही मुक्त आत्माओं का मैथुन है, किसी स्त्री आदि का ग्रहण कर उसके साथ संसारव्यवहार करना मैथुन नहीं है। विश्ववंद्य योगीजन सुखमय वनस्थली आदि में ऐसे ही संयोग का परमानंद प्राप्त किया करते हैं।

इस प्रकार तंत्रशास्त्र में पंचमकारों का वर्णन सांकेतिक भाषा में किया गया है किन्तु भोगलिप्सुओं ने अपने मानसिक स्तर के अनुरूप

उनके अर्थघटन कर उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ किया और इस प्रकार अपना एवं अपने लाखों अनुयायियों का सत्यानाश किया। जिस प्रकार सुन्दर बगीचे में असावधानी बरतने से कुछ जहरीले पौधे उत्पन्न हो जाया करते हैं और फूलने-फलने भी लगते हैं, इसी प्रकार तंत्र-विज्ञान में भी बहुत-सी अवांछनीय गन्दगियाँ आ गयी हैं। यह विषयी-कामान्ध मनुष्यों और मांसाहारी एवं मद्यलोलुप अनाचारियों की ही काली करतूत मालूम होती है, नहीं तो श्रीशिव और ऋषि-प्रणीत मोक्षप्रदायक पवित्र तंत्रशास्त्र में ऐसी बातें कहाँ से और क्यों आतीं ? जिस शास्त्र में अमुक-अमुक जाति की स्त्रियों का नाम ले-लेकर व्यभिचार की आज्ञा दी गयी हो और उसे धर्म तथा साधना बताया गया हो, जिस शास्त्र में पूजा की पद्धति में बहुत ही गंदी वस्तुएँ पूजा-सामग्री के रूप में आवश्यक बतायी गयी हों, जिस शास्त्र को माननेवाले साधक हजारों स्त्रियों के साथ व्यभिचार को और नरबालकों की बलि को अनुष्ठान की सिद्धि में कारण मानते हों, वह शास्त्र तो सर्वथा अशास्त्र और शास्त्र के नाम को कलंकित करनेवाला ही है। ऐसे विकट तामसिक कार्यों को शास्त्रसम्मत मानकर भलाई की इच्छा से इन्हें अपने जीवन में अपनाना सर्वथा भ्रम है, भारी भूल है। ऐसी भूल में कोई पड़े हुए हों तो उन्हें तुरंत ही इससे निकल जाना चाहिए।

आज कल ऐसे साहित्य और ऐसे प्रवचनों की कैसेटें बाजार में सरेआम बिक रही हैं। अतः ऐसे कुमार्गगामी साहित्य और प्रवचनों की कड़ी आलोचना करके जनता को उनके प्रति सावधान करना भी राष्ट्र के युवाधन की सुरक्षा करने में बड़ा सहयोगी सिद्ध होगा।

शरीर को जगत की सेवा में लगा दो, दिल में परमात्मा का प्यार भर दो और बुद्धि को अपना स्वरूप जानने में लगा दो तो आपका बेड़ा पार हो जायेगा।

(आश्रम की 'अनन्य योग' पुस्तक से)

गाँधीजी और ईसाईयत

गाँधीजी ने बचपन से ही हिन्दू धर्म से सभी धर्मों के प्रति उदारता का भाव सीखा। एक प्रतिष्ठित एवं धार्मिक व्यक्ति होने के नाते उनके पिता श्री करमचंद गाँधी के सम्पर्क में प्रायः सभी धर्मों व पंथों के लोग आते और उनसे धार्मिक चर्चाएँ किया करते थे।

अपनी आत्मकथा 'My Experiments With Truth' में गाँधीजी लिखते हैं : ''इन सब चर्चाओं के कारण मुझमें सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता आ गयी, केवल ईसाईयत इसका एक अपवाद रही। उसके प्रति मेरे मन में अरुचि पैदा हो गयी। उन दिनों ईसाई मिशनरी हाईस्कूल के पास एक नुक्कड़ पर ईसाई लोग खड़े हो जाते और हिन्दुओं एवं हिन्दू देवी-देवताओं पर गालियाँ उड़ेलते हुए अपने पंथ का प्रचार करते।

उन्हीं दिनों मैंने सुना कि एक प्रसिद्ध हिन्दू व्यक्ति अपना धर्म बदलकर ईसाई बन गया है। शहर में चर्चा थी कि 'बपतिस्मा' लेते समय उसे गोमांस खाना पड़ा, शराब पीनी पड़ी तथा अपनी वेशभूषा भी बदलनी पड़ी। वह हैट (टोपी) लगाने लगा अर्थात् यूरोपियन वेशभूषा धारण करने लगा। मैंने सोचा : 'जो धर्म किसी को गोमांस खाने, शराब पीने और पहनावा बदलने को विवश करे वह धर्म कहे जानेयोग्य नहीं है।' मैंने यह भी सुना कि वह नया धर्मान्तरित व्यक्ति अपने पूर्वजों के धर्म तथा रहन-सहन को गाली देने लगा है। इन सब कारणों से मुझे ईसाईयत के प्रति घृणा हो गयी।

मैंने 'जेनेसिस' पढ़ा किन्तु बाद के अध्यायों

ने तो मुझे बरबस सुला ही दिया। नाममात्र के लिए बिना कुछ समझे तथा रस लिए मैंने उसके अन्य अध्यायों पर दृष्टि डाली। 'बुक आफ नम्बर्स' तो मुझे बिल्कुल भी पसन्द नहीं आयी। हाँ, 'न्यू टेस्टामेन्ट' के 'सरमन ऑन द माउण्ट' में मुझे कहीं 'गीता' से समानता नजर आयी। यदि कोई सच्चा ईसाई जीवन जीना चाहता है तो उसके लिए ईसाईयत का सार 'सरमन ऑन द माउण्ट' में है परन्तु वैसी ईसाईयत का आचरण तो आज तक कहीं भी नहीं किया गया।

इन पुस्तकों का यह तर्क कि : 'जीसस ही ईश्वर के एकमात्र अवतार या ईश्वर और मनुष्य के बीच में एकमात्र मध्यस्थता करनेवाले हैं' मुझे तनिक भी प्रभावित नहीं कर सका। मैं यह विश्वास कर पाने में असमर्थ था कि जीसस ही ईश्वर के एकमात्र पुत्र हैं। 'जीसस ईश्वर के इकलौते बेटे थे' ऐसा कहना तो नास्तिकता है। जीसस के बलिदान की प्रशंसा की जा सकती है परन्तु उस बलिदान में दिव्य और रहस्यमय कुछ भी नहीं है। वह तो कष्ट को सहने का एक दृष्टांतमात्र है। मेरा विवेक इस बात को मानने के लिए भी तैयार नहीं था कि जीसस अपनी मृत्यु एवं रक्त के द्वारा संसार भर के पापों का बोझ अपने ऊपर लेकर सबका प्रायश्चित्त कर चुके हैं। मैं यह तनिक भी नहीं मानता कि कोई एक व्यक्ति दूसरे के पापों को धो सकता है, उसे मुक्ति दिला सकता है। 'एक अकेला व्यक्ति जीसस करोड़ों मनुष्यों के पापों के प्रायश्चित्त के लिए मर गये तथा उनका उद्धार करनेवाले हो गये' यह विचार तो मैं स्वीकार कर ही नहीं सकता।

मेरी धारणा है कि ईसा मसीह संसार के महान् शिक्षकों में से एक थे। ईसाई मजहब जिस अर्थ में उन्हें संसार का तारणहार समझता है उस अर्थ को मैं नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि संसार भर में केवल ईसा ही देवत्व से विभूषित थे। दो हजार वर्ष पहले कोई एक व्यक्ति मर गया, उसीको ऐतिहासिक ईश्वर बताना तो विडम्बना है, धोखा है।

ईसाई मिशनरियाँ जिस प्रकार से इन दिनों (धर्मान्तरण का) कार्य कर रही हैं, उस तरह के काम का कोई भी अवसर उन्हें स्वतंत्र भारत में नहीं दिया जाना चाहिए। ये मिशनरियाँ समस्त भारतवर्ष को नुकसान पहुँचा रही हैं। मानव परिवार में ऐसी एक चीज का होना एक दुःखद बात है। जब तक आप मिशनरी लोग गैर-ईसाइयों और भारतीयों को अन्धकार में भटकता हुआ मानोगे, तब तक स्वतंत्र भारत में आपके लिए कोई स्थान नहीं होगा। अगर मेरे हाथ में सत्ता हो और मैं कानून बना सकूँ तो मैं धर्मान्तरण का यह सारा धन्धा ही बन्द करा दूँ। जिन परिवारों में मिशनरियों का पैठ है उनके खान-पान, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज तक में परिवर्तन हो गये हैं। आज भी हिन्दू धर्म की निंदा जारी है। ईसाई मिशनों की दुकानों पर मरडॉक की पुस्तकें बिकती हैं। इन पुस्तकों में हिन्दू धर्म की निंदा के अलावा कुछ भी नहीं है।

हिन्दू परिवार आप लोगों को अच्छा जीवन बिताने का न्यौता देते हैं। उसका यह अर्थ नहीं कि आप उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित करें। बड़ी-बड़ी समृद्ध ईसाई धर्म प्रचारक संस्थायें भारत की सच्ची सेवा तो तभी कर पायेंगी जब वे अपने मन को इस बात पर राजी कर लें कि : 'अपनी प्रवृत्तियाँ केवल मानव-दया से प्रेरित सेवाकार्य तक ही सीमित रखेंगे।' सेवा की आड़ में भारत के भोले-भाले लोगों को ईसाई बनाने का उद्देश्य नहीं रखें। केवल लॉर्ड-लॉर्ड चिल्लाने से कोई ईसाई नहीं हो जायेगा। सच्चा ईसाई वह है जो भगवान के उपदेशानुसार आचरण करे और यह कार्य एक ऐसा व्यक्ति भी कर सकता है जिसने कभी जीसस का नाम भी नहीं सुना हो।

मुझे यह कहते हुए पीड़ा हो रही है कि कुछ अपवादों को छोड़कर आमतौर पर ईसाई प्रचारकों ने सामूहिक रूप से उस शासन-प्रणाली को सक्रिय सहायता पहुँचायी है, जिसने पृथ्वी पर सर्वाधिक सुसंस्कृत तथा सभ्य गिने जानेवाले समाजों को कंगाल बनाया है, हतवीर्य किया है तथा नैतिक दृष्टि से भी गिराया है। भारत में ईसाईयत का अर्थ है भारतीयों को राष्ट्रीयता से रहित बनाना तथा उनका यूरोपीयकरण करना।

अगर ईसाई लोग सुधार आन्दोलन में शामिल होना चाहते हैं तो उन्हें मन में धर्मान्तरण का कोई

विचार रखे बिना शामिल होना चाहिए। मुझे कहना पड़ेगा कि मिशनरियों के कार्यों से मेरे मन को चोट पहुँची है। ईसाई मिशनरी संस्थाओं का तो दावा है कि उनके सारे प्रयासों का एक ही लक्ष्य 'आत्मा का उत्थान' है परन्तु अपने धर्मावलम्बियों की जमात बढ़ाने की उनकी होड़ देखकर मेरे मन में बड़ी चोट पहुँची। मुझे ऐसा लगा कि यह तो धर्म का उपहास है।

मेरा निश्चित मत है कि अमेरिका और इंग्लैण्ड ने मिशनरी संस्थाओं को जितना पैसा दिया है उससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई है। 'ईश्वर' और 'धन लोभ' को एक साथ नहीं साधा जा सकता। मुझे तो यह आशंका है कि भारत की सेवा करने के लिए धन-पिशाच को ही भेजा गया है, 'गॉड' पीछे रह गया है। अतः वह एक-न-एक दिन प्रतिशोध अवश्य लेगा। भारत में ईसाईयत अराष्ट्रीयता एवं यूरोपीयकरण का पर्याय बन चुकी है। ईसाई धर्म पाश्चात्य सभ्यता का पर्याय बन गया है। ईसाई मिशनों ने बच्चों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से ही शिक्षा-कार्य में रुचि ली है।

अपने निजी अनुभवों के आधार पर मेरा यह निश्चित मत है कि आध्यात्मिक चेतना के प्रचार के नाम पर आप पैसे एवं सुविधायें बाँटना बंद करें।

निश्चय ही मैं जीसस का सम्मान करता हूँ परन्तु मैं यह कदापि नहीं मान सकता कि जीसस 'गॉड' का अवतार या 'गॉड' के एकमात्र बेटे हैं। 'बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेन्ट' में स्वयं प्रभु के वचन हैं' यह मैं बिल्कुल नहीं मानता।

मेरा धर्म मुझे ईसाइयों और मुसलमानों की भाँति यह नहीं सिखाता कि दुनिया के सभी लोग उस पर ऐसी ही आस्था रखें जैसी मैं रखता हूँ। मेरा धर्म मुझे ऐसी प्रार्थना सिखाता है कि संसार के सभी लोग अपने-अपने धर्मों एवं पंथों के सर्वोत्कृष्ट स्तर को प्राप्त करने की ओर बढ़ें। इसीलिए मैं गीता, महाभारत, रामायण, उपनिषद् एवं भागवत को कभी भी भूलना या खोना नहीं चाहता।

ईसाईयत उन्नीस सौ वर्ष पुरानी है। इस्लाम तेरह सौ वर्ष पुराना है। मुझे यह कहने में हिचक कभी नहीं रही कि वेद तेरह हजार वर्षों से अधिक प्राचीन हैं। सम्भवतः वे दस लाख वर्षों से भी अधिक प्राचीन हैं क्योंकि वेद ईश्वर-वचन हैं। इसलिए वेद उतने ही पुरातन हैं जितने सृष्टि एवं ईश्वर। फिर भी हम विवेक एवं अनुभूति के प्रकाश में ही वेदों की व्याख्या करते हैं।

आप लोग ईसाईयत का संदेश देने भारत आये हैं। कुछ दे पाना तभी सम्भव है जब आप यहाँ से कुछ लें, ग्रहण भी करें। अतः अपना हृदय इस धरती के ज्ञान-कोष के लिए खोलें, तभी आप बाइबिल के संदेश को भी यथार्थ रूप से समझ सकेंगे।''

(गाँधी वांगमय, 'My Experiments With Truth' एवं 'हरिजन' से संकलित)

संकलनकर्त्ता : मदन लखेड़ा

*

धर्म का प्रचार या अनैतिकता का पोषण ?

अभी हाल ही में वर्त्तमान पोप के जन्मस्थान पोलैंड के गदीनिया शहर में एक कैथोलिक पादरी को एक बारह वर्षीय बालक के साथ यौन-दुर्व्यवहार करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया। ३६ वर्षीय उस पादरी का नाम वोसिएच बताया गया है। उस पर एक बच्चे के साथ यौन-दुर्व्यवहार करने का आरोप है। पुलिस ने उसके घर से अश्लील विडियो कैसेटें भी बरामद की हैं।

पिछले दिनों ब्रिटेन के आर्कबिशप मर्फी ओकॉनर द्वारा एक ऐसे पादरी को चर्च का काम करने के लिए समर्थन दिया गया जिस पर अनेक बच्चों के साथ यौन-दुर्व्यवहार करने के आरोप हैं। वह आज कल १३०० बच्चों के दैहिक शोषण के आरोप में जेल की सजा काट रहा है। ६० के दशक में पादरी एरिक टेलर को ब्रिटेन स्थित चर्चों द्वारा चलाये जा रहे अनाथालयों में बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करने के आरोप में सात वर्ष की कैद मिली है। लंदन के पादरी जेम्स मर्फी पर १९७६ से १९९० के बीच बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करने के १८ आरोप हैं। पादरी युजीन ग्रीन को ऐसे ही दुष्कर्मों के लिए १२ वर्ष की कैद मिली है। दुरहम का पादरी एड्रियन मैक्लीश तो

इन सबसे आगे रहा। चार बच्चों को अपनी वासना का शिकार बनाने के बाद उसने अपने इस कुकृत्य को इन्टरनेट के द्वारा प्रचारित भी किया। पुलिस को उसके घर से बच्चों के गंदे चित्रों का बहुत बड़ा भण्डार भी मिला।

एक प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान् द्वारा वहाँ की जनता से अपील...

अमेरिका के ओहियो (Ohio) प्रदेश में वहाँ के नागरिक संघों की ओर से अश्लील साहित्य के विरुद्ध अभियान छेड़ा गया है। वहाँ के एक प्रसिद्ध विद्वान् ब्रूस श्लिक्सटीन ने एक प्रसिद्ध दैनिक 'द सिनसिनाटी एन्क्वायरर' में प्रकाशित अपने एक पत्र द्वारा आन्दोलनकारियों से अपील की है कि :

''जो कामुकता एवं अश्लीलता को समाप्त करना चाहते हैं, उन्हें साहित्य की दुकानों पर प्रदर्शन करके समय व्यर्थ नहीं गँवाकर चर्चों की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, मैंने किसी अश्लील साहित्य की दुकान या क्लब में किसी महिला या बच्चे की इज्जत के साथ जबरदस्ती खिलवाड़ होते हुए नहीं देखा-सुना लेकिन अमेरिका के समाचार- पत्रों में आये दिन ऐसी सैकड़ों खबरें छपती रहती हैं जिनमें चर्चों द्वारा संचालित अनाथालयों में बच्चों तथा महिलाओं के साथ दुष्कर्म किये जाने के विवरण होते हैं।

इसलिए मैं समाज में नैतिकता की पक्षधर समस्त संस्थाओं से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे अमेरिका के चर्चों में होनेवाले इस प्रकार के दुष्कर्मों की जाँच करें। यह एक शर्मनाक बात है कि जिस छत के नीचे नैतिकता की सबसे ज्यादा दुहाई दी जाती है, उसी छत के नीचे महिलाओं एवं बच्चों का दैहिक शोषण होता है।

इस बात को सभी लोग जानते हैं कि अमेरिका में अश्लील साहित्य की दुकानों की अपेक्षा चर्चों की संख्या अधिक है। इसलिए कामुकता के विरुद्ध कोई भी अभियान वहीं से शुरू होना चाहिए, जहाँ इसकी सबसे ज्यादा जरूरत है।''

अब आप स्वयं विचार कीजिये कि ऐसी कुत्सित, विकृत तथा बीमार मानसिकतावाले एवं प्रबल वासना के रोगी यदि संसार में सुख-शांति लाने की बातें करें तो उन्हें किस उपाधि से नवाजा जाना चाहिए ? उनका इलाज कौन-सी चिकित्सा-पद्धति से करना चाहिए ? समाज को सुखी बनाने का ढोंग करते हुए यह समाज को बुरी तरह बर्बाद करने की रणनीति नहीं तो और क्या है ?

अपनी वासना को धर्म का चोगा पहनाकर संसार का उद्धार करने का ठेका लेनेवाले ऐसे लोगों का उद्धार कैसे होगा ?

*

मन से न हारें कभी...

''तेरे पास यदि लेशमात्र भी सुख आये या कणमात्र भी आनंद आये तो तू उसे मन के सम्मुख कर देना और कहना कि : 'इतना आनंद - यही परमानंद है।' मन से हार मत जाना... दुःख को दुःख मान लेने से उसकी जाल को काटना कठिन हो जाता है।

मैं जानता हूँ कि केवल उपदेश देना बहुत सरल है और मैं यह भी जानता हूँ कि जब जीवन संकुचित हो जाता है, तब जगत में से रस खींचना अत्यंत मुश्किल हो जाता है। जीवनरूपी महा मूल्यवान् भेंट मिली है तो जीना ही है- ऐसा मन में पक्का कर लेना। इसके लिए संकीर्ण अवस्था में सिर उठाना ही पड़ेगा, प्रकाश पाना ही पड़ेगा, मुक्त हवा में आत्मा को विस्तृत करना ही होगा।

बाहर की प्रतिकूलता जितनी कठिन होती है, उतनी अंतर की शक्ति को प्राणों की होड़ लगाकर भी जाग्रत और बलवान् बनाना ही पड़ेगा।

संसार के क्लेश से पीड़ित हृदय की शांति के लिए ईश्वर के अनुग्रह के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। सुख-दुःख बाहर की किसी घटना पर आधारित नहीं हैं, बाहर की घटना तो निमित्तमात्र है।''

– महर्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर

'परमात्मा के सिवाय कुछ है ही नहीं, बना भी नहीं और बनेगा भी नहीं... तो फिर व्यर्थ के संकल्प करके क्यों परेशान हों ?' ऐसे विचार में दृढ़ होने से जगत की उपाधियाँ हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल पाती हैं।

संकल्प एवं कल्पना... इसीका नाम है जगत। नींद में संकल्प या कल्पना नहीं रहती अतः जगत के सुख-दुःख का प्रभाव भी नहीं रहता। हम जब तक नहीं समझे थे, तब तक जगत को सत्य मानकर बड़े परेशान हुए, लेकिन अब तो... जो होना हो सो होय। जगत तो ऐसा ही रहनेवाला है।

हमारा चाहा सब नहीं होता है। हमारी इच्छा के अनुसार ही सब हो, यह कैसे संभव है ? 'इच्छानुसार सब नहीं होता...' यही बताता है कि मन एवं बुद्धि से परे एक अगम्य तत्त्व है जो सबका नियमन करता है। जब हमारे विचार उस तत्त्व के अनुकूल होते हैं तभी शांति का अनुभव होता है एवं उसके अनुकूल होने के लिये अपने शरीर, मन वगैरह को भूलना ही पड़ता है। जब मनुष्य उस अगम्य-अगोचर तत्त्व को जान लेता है, उसीमें विचरता है तब अपने-आप सब भूल जाता है।

देर-सबेर यह शरीर जाने ही वाला है। व्याधि से ग्रस्त होकर या अन्य तरीके से वह अपने पंचतत्त्व में विलीन होगा ही। एक संत क़हते हैं : ''मैंने अंतर में खूब विचार करके खोजना चाहा कि : 'सुख किसे कहते हैं और दुःख किसे कहते हैं ?' ...किन्तु सुख-दुःख की अनुकूल व्याख्या नहीं मिलती। आज हम जिसे सुख मानते हैं, कल वही दुःखरूप हो जाता है।''

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बड़ी उत्तम बात कह सुनायी है कि : 'जो द्वन्द्वों (सुख-दुःख, भूख-प्यास, जन्म-मरण आदि) से पार हो सकता है वही उत्तम है, वही बुद्धिमान् है और सबमें ऐसा मनुष्य ही पूज्य माना जाता है।'

इसका अर्थ तो वास्तव में ऐसा होता है कि जो व्यक्ति प्राप्त कर्मों को बिना ऊबे हुए करता है एवं परमात्मा में श्रद्धा रखकर आत्मस्थ होता है उसीका जीवन कृतकृत्य है।

एकादशी माहात्म्य

[उत्पत्ति एकादशी : २१, २२ नवम्बर २०००]

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा :

''भगवन् ! पुण्यमयी एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुई ? इस संसार में वह क्यों पवित्र मानी गयी तथा देवताओं को कैसे प्रिय हुई ?''

श्रीभगवान बोले : ''कुन्तीनन्दन ! प्राचीन समय की बात है। सत्ययुग में मुर नामक दानव रहता था। वह बड़ा ही अद्भुत, अत्यन्त रौद्र तथा सम्पूर्ण देवताओं के लिए भयंकर था। उस कालरूपधारी दुरात्मा महासुर ने इन्द्र को भी जीत लिया था। सम्पूर्ण देवता उससे परास्त होकर स्वर्ग से निकाले जा चुके थे और शंकित तथा भयभीत होकर पृथ्वी पर विचरा करते थे। एक दिन सब देवता महादेवजी के पास गये। वहाँ इन्द्र ने भगवान शिव के आगे सारा हाल कह सुनाया।

इन्द्र बोले : 'महेश्वर ! ये देवता स्वर्गलोक से निकाले जाने के बाद पृथ्वी पर विचर रहे हैं। मनुष्यों के बीच रहना इन्हें शोभा नहीं देता। देव ! कोई उपाय बतलाइये। देवता किसका सहारा लें ?'

महादेवजी ने कहा : 'देवराज ! जहाँ सबको शरण देनेवाले, सबकी रक्षा में तत्पर रहनेवाले जगत के स्वामी भगवान गरुडध्वज विराजमान हैं, वहाँ जाओ। वे तुम लोगों की रक्षा करेंगे।'

युधिष्ठिर ! महादेवजी की यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं के साथ क्षीरसागर में गये जहाँ भगवान गदाधर सो रहे थे। इन्द्र ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की।

इन्द्र बोले : 'देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है ! देव ! आप ही पति, आप ही मति, आप ही कर्त्ता और आप ही कारण हैं। आप ही सब लोगों

की माता और आप ही इस जगत के पिता हैं। देवता और दानव दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। पुण्डरीकाक्ष ! आप दैत्यों के शत्रु हैं। मधुसूदन ! हम लोगों की रक्षा कीजिये। प्रभो ! जगन्नाथ ! अत्यन्त उग्र स्वभाववाले महाबली मुर नामक दैत्य ने इन सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर स्वर्ग से बाहर निकाल दिया है। भगवन् ! देवदेवेश्वर ! शरणागतवत्सल ! देवता भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं। दानवों का विनाश करनेवाले कमलनयन ! भक्तवत्सल ! देवदेवेश्वर ! जनार्दन ! हमारी रक्षा कीजिये... रक्षा कीजिये। भगवन् ! शरण में आये हुए देवताओं की सहायता कीजिये।'

इन्द्र की बात सुनकर भगवान विष्णु बोले :

'देवराज ! वह दानव कैसा है ? उसका रूप और बल कैसा है तथा उस दुष्ट के रहने का स्थान कहाँ है ?'

इन्द्र बोले : 'देवेश्वर ! पूर्वकाल में ब्रह्माजी के वंश में तालजंघ नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था, जो अत्यन्त भयंकर था। उसका पुत्र मुर दानव के नाम से विख्यात है। वह भी अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी और देवताओं के लिये भयंकर है। चन्द्रावती नाम से प्रसिद्ध एक नगरी है, उसीमें स्थान बनाकर वह निवास करता है। उस दैत्य ने समस्त देवताओं को परास्त करके उन्हें स्वर्गलोक से बाहर कर दिया है। उसने एक दूसरे ही इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाया है। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं। जनार्दन ! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। उसने सब कोई दूसरे ही कर लिये हैं। देवताओं को तो उसने उनके प्रत्येक स्थान से वंचित कर दिया है।'

इन्द्र की यह बात सुनकर भगवान जनार्दन को बड़ा क्रोध आया। वे देवताओं को साथ लेकर चन्द्रावती नगरी में प्रवेश किये। भगवान गदाधर ने देखा कि : 'दैत्यराज बारंबार गर्जना कर रहा है और उससे परास्त होकर सम्पूर्ण देवता दसों दिशाओं में भाग रहे हैं।' अब वह दानव भगवान विष्णु को देखकर बोला : 'खड़ा रह... खड़ा रह।' उसकी यह ललकार सुनकर भगवान के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वे बोले :

'अरे दुराचारी दानव ! मेरी इन भुजाओं को देख।' यह कहकर श्रीविष्णु ने अपने दिव्य बाणों से सामने आये हुए दुष्ट दानवों को मारना आरम्भ किया। दानव भय से विह्वल हो उठे। पाण्डुनन्दन ! तत्पश्चात् श्रीविष्णु ने दैत्य सेना पर चक्र का प्रहार किया। उससे छिन्न-भिन्न होकर सैकड़ों योद्धा मौत के मुख में चले गये।

इसके बाद भगवान मधुसूदन बदरिकाश्रम को चले गये। वहाँ सिंहावती नाम की गुफा थी, जो बारह योजन लम्बी थी। पाण्डुनन्दन ! उस गुफा में एक ही दरवाजा था। भगवान विष्णु उसीमें सो रहे थे। वह दानव मुर भगवान को मार डालने के उद्योग में उनके पीछे-पीछे तो लगा ही था। अतः उसने भी उसी गुफा में प्रवेश किया। वहाँ भगवान को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा : 'यह दानवों को भय देनेवाला देवता है। अतः निःसन्देह इसे मार डालूँगा।' युधिष्ठिर ! दानव के इस प्रकार विचार करते ही भगवान विष्णु के शरीर से एक कन्या प्रकट हुई, जो बड़ी ही रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी। वह भगवान के तेज के अंश से उत्पन्न हुई थी। उसका बल और पराक्रम महान् था। युधिष्ठिर ! दानवराज मुर ने उस कन्या को देखा। कन्या ने युद्ध का विचार करके दानव के साथ युद्ध के लिये याचना की। युद्ध छिड़ गया। कन्या सब प्रकार की युद्धकला में निपुण थी। वह मुर नामक महान् असुर उसके हुंकारमात्र से राख का ढेर हो गया। दानव के मारे जाने पर भगवान जाग उठे। उन्होंने दानव को धरती पर इस प्रकार निष्प्राण पड़ा देख पूछा : 'मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयंकर था। किसने इसका वध किया है ?'

कन्या बोली : 'स्वामिन् ! आपके ही प्रसाद से मैंने इस महादैत्य का वध किया है।'

श्रीभगवान ने कहा : 'कल्याणी ! तुम्हारे इस कर्म से तीनों लोकों के मुनि और देवता आनन्दित हुए हैं। अतः तुम्हारे मन में जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे कोई वर माँग लो। देवदुर्लभ होने पर भी वह वर मैं तुम्हें दूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी। उसने कहा : 'प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी कृपा से सब तीर्थों में प्रधान, समस्त विघ्नों का

नाश करनेवाली तथा सब प्रकार की सिद्धि देनेवाली देवी होऊँ। जनार्दन ! जो लोग आपमें भक्ति रखते हुए मेरे दिन को उपवास करेंगे, उन्हें सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो। माधव ! जो लोग उपवास, नक्त भोजन अथवा एकभुक्त करके मेरे व्रत का पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान कीजिये।'

श्रीविष्णु बोले : 'कल्याणी ! तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा।'

युधिष्ठिर ! ऐसा वर पाकर महाव्रता एकादशी बहुत प्रसन्न हुई। दोनों पक्षों की एकादशी समान रूप से कल्याण करनेवाली है। इसमें शुक्ल और कृष्ण का भेद नहीं करना चाहिए। यदि उदयकाल में थोड़ी-सी एकादशी, मध्य में पूरी द्वादशी और अन्त में किंचित् त्रयोदशी हो तो वह 'त्रिस्पृशा' एकादशी कहलाती है। वह भगवान को बहुत ही प्रिय है। यदि एक त्रिस्पृशा एकादशी को उपवास कर लिया जाय तो एक हजार एकादशी व्रतों का फल प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार द्वादशी में पारण करने पर हजारगुना फल माना गया है। अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया और चतुर्दशी- ये यदि पूर्वतिथि से विद्ध हों तो उनमें व्रत नहीं करना चाहिए। परवर्तिनी तिथि से युक्त होने पर ही इनमें उपवास का विधान है। पहले दिन दिन में और रात में भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रातःकाल एकदण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथि का परित्याग करके दूसरे दिन की द्वादशीयुक्त एकादशी को ही उपवास करना चाहिए। यह विधि मैंने दोनों पक्षों की एकादशी के लिये बतायी है।

जो मनुष्य एकादशी को उपवास करता है, वह वैकुण्ठधाम में जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान गरुडध्वज विराजमान रहते हैं। जो मानव हर समय एकादशी के माहात्म्य का पाठ करता है, उसे हजार गोदानों के पुण्य का फल प्राप्त होता है। जो दिन या रात में भक्तिपूर्वक इस माहात्म्य का श्रवण करते हैं, वे निःसन्देह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाते हैं। एकादशी के समान पापनाशक व्रत दूसरा कोई नहीं है।'' ('पद्म पुराण' से)

शीत ऋतु का सूखा मेवा : अंजीर

अंजीर की लाल, काली, सफेद और पीली ये चार प्रकार की जातियाँ पायी जाती हैं। इसके कच्चे फलों की सब्जी बनती है। पके अंजीर का मुरब्बा बनता है। **अधिक मात्रा में अंजीर खाने से यकृत (Liver) एवं जठर को नुकसान होता है।** बादाम खाने से अंजीर के दोषों का शमन होता है।

गुण-धर्म : पके, ताजे अंजीर गुण में शीतल, स्वाद में मधुर, स्वादिष्ट एवं पचने में भारी होते हैं। ये वायु एवं पित्तदोष का शमन करते हैं एवं रक्त की वृद्धि करते हैं। ये रस एवं विपाक में मधुर एवं शीतवीर्य होते हैं। भारी होने के कारण कफ एवं आमवात के रोगों की वृद्धि करते हैं एवं मंदाग्नि करते हैं। ये कृमि, हृदयपीड़ा, रक्त-पित्त, दाह एवं रक्तविकारनाशक हैं। ठंडे होने के कारण नकसीर फूटने में, पित्त रोगों में एवं मस्तक के रोगों में विशेष लाभप्रद होते हैं।

✲ सूखे अंजीर में उपरोक्त गुणों के अलावा शरीर को स्निग्ध करने, वायु की गति को ठीक करने एवं श्वास रोग का नाश करने के गुण भी विद्यमान होते हैं।

✲ सभी सूखे मेवों में देह को सबसे ज्यादा पोषण देनेवाला मेवा अंजीर है। इसके अलावा यह देह की कांति तथा सौन्दर्य बढ़ानेवाला है, पसीना उत्पन्न करता है एवं गरमी का शमन करता है।

✲ अंजीर को बादाम एवं पिस्ता के साथ खाने से बुद्धि बढ़ती है और अखरोट के साथ खाने से विष-विकार नष्ट होता है।

✲ आधुनिक विज्ञान के मतानुसार अंजीर बालकों की कब्जियत मिटाने के लिये विशेष उपयोगी है। कब्जियत के कारण जब मल आँतों में सड़ने लगता है, तब उसके जहरीले तत्त्व रक्त में

मिल जाते हैं और रक्तवाही धमनियों में रुकावट डालते हैं जिससे शरीर के सभी अंगों में रक्त नहीं पहुँचता। इसके फलस्वरूप शरीर कमजोर हो जाता है एवं दिमाग, नेत्र, हृदय, जठर, बड़ी आँत आदि अंगों में रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर दुबला-पतला होकर जवानी में ही वृद्धत्व नज़र आने लगता है। ऐसी स्थिति में अंजीर का उपयोग अत्यंत लाभदायी होता है। यह आँतों की शुद्धि करके रक्त बढ़ाता है एवं रक्त-परिभ्रमण को सामान्य बनाता है।

✲ किसी बालक ने काँच, पत्थर अथवा ऐसी अन्य कोई अखाद्य ठोस वस्तु निगल ली हो तो उसे रोज एक से दो अंजीर खिलायें। इससे वह वस्तु मल के साथ बाहर निकल जायेगी। अंजीर चबाकर खाना चाहिए।

✲ अंजीर में विटामिन 'ए' पाया जाता है। इस कारण यह आँख के प्राकृतिक गीलेपन को बनाये रखता है।

✲ औषधि-प्रयोग ✲

१. रक्तशुद्धि के लिये : ३-४ पके हुए अंजीर को छीलकर आमने-सामने दो चीरे लगा दें और उसमें मिश्री का चूर्ण भर दें एवं रात्रि को खुले आकाश में ओस से तर होने के लिए कहीं रख दें। प्रातःकाल उसका सेवन करें। इस प्रयोग से रक्त की गर्मी नष्ट होगी एवं रक्त शुद्ध होगा।

२. रक्तवृद्धि : ४ अंजीर एवं ११ सूखी काली द्राक्ष को १०० से २०० मि.ली. गाय के दूध में उबालें। एक उबाल आने पर वह दूध पी लें एवं अंजीर तथा द्राक्ष को चबाकर खा जायें। इससे कब्जियत दूर होती है, आँतों को बल मिलता है, भूख बढ़ती है एवं रक्त शुद्ध होता है। एक से दो महीने तक यह प्रयोग करें।

३. रक्तस्राव : शरीर के किसी भी भाग से रक्तस्राव होता हो तो २ से ६ अंजीर को ५० मि.ली. पानी में भिगोकर पीस लें। इसके बाद उसमें २० ग्राम दुर्वा घास का रस एवं १० ग्राम मिश्री मिलाकर सुबह-शाम पियें। ज्यादा रक्तस्राव हो तो खस एवं धनिया के पाउडर को पानी में पीसकर ललाट पर एवं हाथ-पैर के तलुओं में लेप करें। इससे लाभ होता है।

४. मंदाग्नि एवं उदररोग : जिनकी पाचनशक्ति मंद हो, दूध न पचता हो उन्हें २ से ४ अंजीर रात्रि में पानी में भिगोकर सुबह चबाकर खाना चाहिए एवं वह पानी पी लेना चाहिए।

५. कब्जियत : प्रतिदिन ५ से ६ अंजीर को उसके टुकड़े करके २५० मि.ली. पानी में भिगो दें। सुबह उस पानी को उबालकर आधा कर दें और पी जायें। पीने के बाद अंजीर चबाकर खायें तो थोड़े ही दिनों में कब्जियत दूर होकर पाचनशक्ति बलवान् होगी। बच्चों के लिए १ से ३ अंजीर पर्याप्त हैं।

६. बवासीर (Piles) : २ से ४ अंजीर रात को पानी में भिगोकर सुबह खायें और सुबह भिगोकर शाम को खायें। इस प्रकार प्रतिदिन करने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। अथवा,

अंजीर, काली द्राक्ष (सूखी), हरड़ एवं मिश्री को समान मात्रा में लेकर उसे कूटकर सुपारी जितनी बड़ी गोली बना लें। प्रतिदिन सुबह-शाम एक-एक गोली का सेवन करने से भी लाभ होता है।

७. बहुमूत्रता : जिन्हें बार-बार ज्यादा मात्रा में ठंडी एवं सफेद रंग की पेशाब होती हो, कंठ सूखता हो, शरीर दुर्बल होती जा रहा हो तो रोज प्रातःकाल २ से ४ अंजीर खाने के बाद ऊपर से १० से १५ ग्राम काला तिल चबाकर खायें। इससे आराम मिलता है।

८. मूत्रकृच्छता (मूत्राल्पता) : १ या २ अंजीर में १ या २ ग्राम कलमी सोडा मिलाकर प्रतिदिन सुबह खाने से मूत्राल्पता में लाभ होता है।

९. श्वास (गर्मी का दमा) : ६ ग्राम अंजीर एवं ३ ग्राम गोरख इमली का चूर्ण सुबह-शाम खाने से इसमें लाभ होता है। श्वास के साथ खाँसी भी हो तो उसमें २ ग्राम जीरे का चूर्ण मिलाकर लेने से ज्यादा लाभ होगा।

✲ शीत ऋतु में देहपुष्टि हेतु अंजीरपाक ✲

५० ग्राम सूखे अंजीर लेकर उसके ६-८ छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। ५०० ग्राम देशी घी गर्म करके उसमें अंजीर के वे टुकड़े डालकर २०० ग्राम मिश्री का चूर्ण मिला दें। इसके पश्चात् उसमें बड़ी इलायची ५ ग्राम, चारोली, बलदाणा एवं पिस्ता १०-१० ग्राम तथा २० ग्राम बादाम के छोटे-छोटे टुकड़ों को ठीक ढंग से मिश्रित कर काँच की बर्नी में भर लें। अंजीर के टुकड़े घी में डुबे रहने चाहिए। घी कम लगे तो उसमें और ज्यादा घी डाल सकते हैं।

यह मिश्रण आठ दिन तक बर्नी में पड़े रहने से

अंजीरपाक तैयार हो जाता है। इस अंजीरपाक को प्रतिदिन सुबह १० से २० ग्राम की मात्रा में खाली पेट खायें। शीत ऋतु में शक्ति-संचय के लिये यह अत्यंत पौष्टिक पाक है। यह अशक्त एवं कमजोर व्यक्ति का रक्त बढ़ाकर धातु को पुष्ट करता है।

*

अश्वगंधा

अश्वगंधा एक बलवर्धक व पुष्टिदायक श्रेष्ठ रसायन है। यह मधुर व स्निग्ध होने के कारण वात का शमन करनेवाली एवं रस, रक्त आदि सप्त धातुओं का पोषण करनेवाली है। इससे विशेषतः मांस व शुक्रधातु की वृद्धि होती है।

इसमें कैल्शियम व लौह तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। अतः कुपोषण के कारण बालकों में होनेवाले सूखा रोग, मांसपेशियों व बुढ़ापे की कमजोरी, थकान, रोगों के बाद की कृशता आदि में यह अत्यंत उपयुक्त औषधि है। इसके निरन्तर उपयोग से शरीर का समग्र रूप से शोधन होता है एवं जीवनीशक्ति बढती है। नित्य प्रातः १ से ३ ग्राम चूर्ण दूध में मिलाकर लेने से शरीर में लाल रक्तकणों की वृद्धि होती है।

कुपोषण के कारण बालकों में होनेवाले सूखा रोग में यह अत्यंत लाभदायी औषधि है। इसका १ से ३ ग्राम चूर्ण एक माह तक दूध, घी या पानी के साथ लेने से बालक का शरीर उसी प्रकार पुष्ट हो जाता है जैसे वर्षा होने पर फसल लहलहा उठते हैं।

क्षयरोग व पक्षाघात में अन्य औषधियों के साथ बल्य के रूप में इसे गोघृत और मिश्री के साथ लिया जा सकता है। अश्वगंधा अत्यंत वाजीकारक अर्थात् शुक्रधातु की त्वरित वृद्धि करनेवाला रसायन है। इसके २ ग्राम चूर्ण को घी व मिश्री के साथ लेने से शुक्राणुओं की वृद्धि होती है एवं वीर्यदोष दूर होते हैं।

एक ग्राम चूर्ण दूध व मिश्री के साथ लेने पर नींद अच्छी आती है। मानसिक या शारीरिक थकान के कारण नींद न आने पर इसका उपयोग किया जा सकता है।

अश्वगंधा, ब्राह्मी तथा जटामांसी समान मात्रा में मिलाकर इसका १ से ३ ग्राम चूर्ण शहद के साथ लेने से उच्च रक्तचाप कम होने लगता है। इस प्रयोग से नींद भी अच्छी आती है। आहार में नमक न लें।

गर्भधारण के बाद चौथे, पाँचवें तथा छठें महीने में अश्वगंधा और शतावरी का एक-एक चम्मच चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर सुबह-शाम गाय के दूध के साथ लेने से बालक का पोषण अच्छी तरह से होता है। प्रसूति के बाद भी यह प्रयोग चालू रखें। इससे बालक के पोषणार्थ आवश्यक कैल्शियम एवं लौह तत्त्व की पूर्ति होती है।

सभी लोग इस पौष्टिक वनस्पति का फायदा ले सकते हैं। हजारों-लाखों रूपयों की विदेशी औषधियाँ शरीर को उतना निर्दोष फायदा नहीं पहुँचातीं, उतना पोषण नहीं देतीं, जितना पोषण अश्वगंधा देती है। अश्वगंधा कम दाम पर सभी साधकों तक पहुँच सके ऐसी आज्ञा पूज्य बापू ने औषध निर्माण केन्द्र व समितियों को दी है। बाजार में यह २८ रू. का ८० ग्राम मिलता है लेकिन अपना औषध निर्माण केन्द्र २० रू. में १०० ग्राम देता है। यह अश्वगंधा बल-वीर्यवर्धक है, तमाम गुणों से युक्त है। मेथीपाक अथवा अन्य किसी भी पाक में डालकर इसका उपयोग कर सकते हैं।

सर्दी के लिए पौष्टिक किसी भी एक कि.ग्रा. पाक में ५० से १०० ग्राम अश्वगंधा डाल सकते हैं। इससे उस पाक की पौष्टिकता में कई गुनी वृद्धि हो जायेगी।

[साँई श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।]

*

क्या आप जानते हैं साबूदाने की असलियत को ?

आमतौर पर साबूदाना शाकाहारी कहा जाता है तथा व्रत-उपवास में इसका काफी प्रयोग होता है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि साबूदाना शाकाहार होने पर भी पवित्र नहीं है ?

यह सच है कि साबूदाना (Tapioca) 'कसावा' के गूदे से बनाया जाता है परन्तु इसकी निर्माणविधि इतनी अपवित्र है कि इसे शाकाहार एवं स्वास्थ्यप्रद नहीं कहा जा सकता।

साबूदाना बनाने के लिए सबसे पहले कसावा को खुले मैदान में बनी कुण्डियों में डाला जाता है तथा रसायनों की सहायता से उन्हें लम्बे समय तक सड़ाया जाता है। इस प्रकार सड़ने से तैयार हुआ गूदा महीनों तक खुले आसमान के नीचे पड़ा रहता है। रात में कुण्डियों को गर्मी देने के लिए उनके आस-पास बड़े-बड़े बल्ब जलाये जाते हैं। इससे बल्ब के आस-पास उड़नेवाले कई छोटे-छोटे जहरीले जीव

भी इन कुण्डियों में गिरकर मर जाते हैं।

दूसरी ओर इस गूदे में पानी डाला जाता है जिससे उसमें सफेद रंग के करोड़ों लम्बे कृमि पैदा हो जाते हैं। इसके बाद इस गूदे को मजदूरों के पैरों से रौंदाया जाता है। इस प्रक्रिया में गूदे में गिरे हुए कीट-पतंग तथा सफेद कृमि भी उसी में समा जाते हैं। यह प्रक्रिया कई बार दोहरायी जाती है।

इसके बाद इसे मशीनों में डाला जाता है और मोती जैसे चमकीले दाने बनाकर साबूदाना का नाम-रूप दिया जाता है परन्तु इस चमक में अपवित्रता छिपी होती है जो सभी को नहीं दिखाई देती। (संकलित)

कैन्सर से मुक्ति

मैं इन्दौर जिले की महू तहसील में सहायक विकास विस्तार अधिकारी के पद पर कार्यरत हूँ। फरवरी '९८ में मेरे साथ एक आकस्मिक दुर्घटना हुई जिससे मुझे अस्पताल में भर्ती किया गया। लगभग ६ माह के पश्चात् अस्पताल से छुट्टी दी गई। इस दौरान मेरी पत्नी जो कि कैन्सर से पीड़ित थी उसका इलाज नहीं हो सका और बीमारी ने विकराल रूप ले लिया।

हमारे कार्यालय में कार्यरत श्री मालवीयजी पूज्य बापूजी से दीक्षित हैं। जब उन्हें इस बीमारी का पता चला तो उन्होंने मुझे समझाया कि : 'आप पूज्य बापूजी पर पूर्ण रूप से विश्वास रखकर ५ ग्राम शहद अथवा ५० ग्राम ताजे दही के साथ १० ग्राम तुलसी का रस इन्हें देना प्रारंभ कर दो। पूज्य बापू के आशीर्वाद से इनकी बीमारी जड़ से समाप्त हो जायेगी।'

आज लगभग एक वर्ष पूरा हो चुका है। पुनः जाँच करवाने पर पता चला कि अब कैन्सर जड़ से समाप्त हो चुका है। यह पूज्यश्री के आशीर्वाद का फल है। मैंने मन-ही-मन पूज्यश्री को अपना सद्गुरु बना लिया है। अब पूज्यश्री जब अपने चरणों में बुला लेंगे, उसी समय दीक्षा भी ग्रहण हो जायेगी।

हरि ॐ...

- जगन्नाथराव पाटिल
सहायक विकास विस्तार अधिकारी, इन्दौर।

एक नया इतिहास बनाया...

ये वे भारतीय माता हैं,
नाम मेहँगीबा माता है।
इन्हें प्यार से 'अम्मा' कहते हैं,
हम सब साधकों की माता हैं॥
न्योछावर किया जीवन भर सब कुछ,
गरीब-दीन मोहताजों के लिए।
तन की है क्या बात, समर्पित की,
निज आत्मा देश के लिए॥
पुत्ररूप में सद्‌गुरु पाकर,
भगवद्‌तत्त्व को जान लिया।
गुरुभक्ति-गुरुनिष्ठा दिखाकर,
विश्व को नया संदेश दिया॥
ऐसी भारतीय माँ की,
कभी नापी नहीं जाती गहराई।
अपना हृदय पिघलाकर जिन्होंने,
समता की रसधार बहाई॥
सदैव प्रसन्न रहकर जिन्होंने,
सुख-दुःख को भी जीत लिया।
लाखों कष्ट सहे माता ने,
सबको धैर्य का पाठ दिया॥
गुरुवचनों में श्रद्धा रखकर,
निर्दोष बन व्यवहार किया।
देती रही जीवन भर सबको,
सबका हँसकर स्वागत किया॥
पुत्र कपिल में गुरुबुद्धि कर,
ज्यों देवहूति व्यापक में समाईं।
त्यों बापू में भगवद्‌बुद्धि कर,
माता ब्रह्म में समाईं॥
माँ मेहँगीबा ने लाखों वर्षों बाद,
इतिहास ताजा कर दिखलाया।
और कलियुग में अपना,
एक नया इतिहास बनाया॥

आओ, आज हम गौरव करें,
ऐसी स्नेहमयी माता का।
कृतज्ञता के सुमन समर्पित करें,
गुण गायें उनकी गाथा का॥
हे परमेश्वर ! हमें दो अवसर,
ऐसी माँ को बार-बार प्रगटाओ।
जगदोद्धार हेतु इन माँ के घर,
आप स्वयं ही आ जाओ॥

- प्रदीप काशीकर

अम्मा ने ली विदाई

सन् उन्नीस सौ निन्यानवे, चार नवम्बर आई।
कृष्ण पक्ष आसोज मास था, एकादशी मन भाई॥
समय पाँच सैंतीस था, ब्राह्ममुहूर्त की बेला आई।
संत साँई की पुनीत गोद में, अम्मा ने ली विदाई॥
उम्र बयानवे में अम्मा, अनन्त ब्रह्म में समाईं।
सम्मुख थीं माँ लक्ष्मी, सम्मुख श्री नारायण साँई॥
अन्तिम दर्शन करने सारे, दिल्ली आश्रम आये।
संतों-भक्तों-नेताओं ने, भाव से पुष्प चढ़ाये॥
पार्थिव शरीर वायुयान से, अमदावाद में लाये।
श्रद्धा-सुमन समर्पित करने, हजारों भक्त आये॥
सात नवम्बर रविवार को, महा समाधि दी थी।
ब्राह्मी स्थिति में मेहँगी माँ ने, महा समाधि ली थी॥

- हरिभाई जी. पोपट, मुलुन्ड, मुम्बई।

युवाधन सुरक्षा अभियान

युवाधन सुरक्षा अभियान के सेवाधारी!
अवरोधों का व्यूह तोड़ लक्ष्यानुसंधान कर,
कायरों को वीरता का पाठ तो पढ़ा दो तुम।
उच्चाशय से नेह जोड़ एक साथ धावित हो,
मानव को मानवता का ज्ञान तो करा दो तुम॥
दुष्ट और दम्भियों के दम्भ को कुचल सदा,
विश्व में नवीन एक चेतना जगा दो तुम।
ऋषियों और मुनियों के उपदेश को हृदय धार,
भोगियों को योग के महत्त्व को बता दो तुम॥
सेवक सदा ही बनो न कि कोई दयावान्,
सेवा का परम लाभ जग को दिखा दो तुम।
पशुता के सिर पैर धार मानवता का मंत्र मार,
देवत्व की ध्वजा पे अपना नाम तो लिखा दो तुम॥
व्यष्टि को समष्टि के सागर में विलीन कर।
जीवन के परम सत्य योग को जगा दो तुम॥

※ संस्था समाचार ※

जयपुर (राज.) : १३ से १५ अक्तूबर । त्रिदिवसीय शरदपूर्णिमा महोत्सव संपन्न हुआ। जनता ने स्थानीय राजस्थानी भाषा में गुरुवंदना की :

आयो आयो जी गुरुजी, म्हाके अंगना में।
याद घणी आवै थाँरी, ओल्यु घणी आवै प्रेम।
वालो नीर बरसे अँखिया में ॥ आयो आयो...

भवानी निकेतन हाईस्कूल मैदान पर निर्मित सत्संग पाण्डाल तीनों दिन जनमेदिनी से खचाखच भरा रहा। 'गुलाबी नगरी' इन तीन दिनों में 'अध्यात्म नगरी' बनी रही। ज्ञानभक्ति-योगमार्ग के अनुभवसंपन्न ज्ञाता पू. बापू की अमृतवर्षा से राजधानी व देश के दूर-सुदूर क्षेत्रों से आए पूनमव्रतधारी लाभान्वित हुए। उन्होंने पू. गुरुदेवश्री के दर्शन-सत्संग प्राप्त कर अपना व्रत पूर्ण किया। ऋतु अनुकूल परंपरागत ढंग से बनी दूध और पोहे की स्वास्थ्यवर्धक व स्वादिष्ट खीर की प्रसादी चंद्रमा की स्वास्थ्यवर्धक किरणों में रखी गयी थी, उसमें सोने-चाँदी के पात्र भी डाले गये थे। रात्रि साढ़े दस बजे के बाद हजारों भक्तों ने वह प्रसाद पाया।

गीता-ज्ञान के द्वारा अपनी समझ उन्नत करने की प्रेरणा देते हुए पू. बापूजी ने यहाँ कहा कि : **''गीता-ज्ञान के अनुरूप अपनी समझ बनाओ। गीता के प्रति आस्था छोड़ने के कारण ही आज भारतवासी पाश्चात्य 'कल्चर' से प्रभावित हैं। गीता समझ की ऐसी अमृतवर्षा करती है कि इसका उपासक नौकरी, काम-धंधा करते हुए भी अमरता का शंखनाद कर सकता है।''**

१४ अक्तूबर का प्रथम सत्र विद्यार्थियों के लिए नियत था जिसमें पूज्यश्री ने राष्ट्र के युवाधन को तेजस्वी-ओजस्वी बनने की प्रेरणा व मार्गदर्शन दिये तथा यौवन सुरक्षा के प्रति सावधान किया।

सुमेरपुर (राज.) : यहाँ २० से २२ अक्तूबर तक सत्संग कार्यक्रम संपन्न हुआ। अपने कर्म को ही भक्ति बनाने की युक्ति बताते हुए योगनिष्ठ बापूजी ने कहा कि : **''भगवद्प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाले का कलियुग कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तुम अपने भाव में भगवद्भाव ले आओ। किसी व्यक्ति, वस्तु एवं परिस्थिति में आसक्ति न करो।''**

वास्तुशास्त्री व भूगर्भशास्त्र के विशेषज्ञों के अनुसार, ''सुमेरपुर स्थित आश्रम में ८ मीटर चौड़ी एक ऐसी लंबी रेखा गुजरती है जिस पर बैठने, जप-ध्यान करने से अनायास ही मन शांत होने लगता है।'' विलक्षण आध्यात्मिक स्पंदनों से युक्त इस भू-पट्टी पर बैठकर अनेक साधकों ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया। कुछ अस्वस्थ लोगों को स्वास्थ्य-लाभ भी हुआ।

नाणा-भीमाणा (राज.) : २३ अक्तूबर को पूज्यश्री के मार्गदर्शन में यहाँ विशाल भंडारा संपन्न हुआ। स्थानीय आदिवासियों व गरीबों को अन्न, वस्त्र, बर्तन, दक्षिणा एवं मिठाइयाँ वितरित की गईं। वहाँ श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन भी हुआ। भगवन्नाम-कीर्तन ज्यों ही प्रारंभ हुआ, त्यों ही भक्तहृदय आदिवासीजन खुशी से नाच उठे। नृत्य व तालियों से वे अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे। फटे-पुराने वस्त्र पहने वे गरीब आदिवासी भले ही बाहर से दरिद्रनारायण नजर आ रहे थे, पर भीतर से, हृदय से वे गरीब नहीं थे। ऐसी निर्दोष प्रसन्नता व निश्चिंतता भौतिक दृष्टि से संपन्न लोगों में भी कहाँ, जो इन अभावग्रस्त गरीब निर्दोष आदिवासियों में थी।

अमदावाद आश्रम : २६ अक्तूबर को साबरमती तट पर स्थित उच्च आध्यात्मिक स्पंदनों से युक्त मुख्य आश्रम में दीपावली व नूतनवर्ष महोत्सव संपन्न हुआ। देश-विदेशों से बड़ी संख्या में आए हुए साधक भाई-बहनों ने प्रसन्नता, हर्ष-उल्लास के साथ पूज्यश्री के प्रेरणादायी सान्निध्य में यह पर्व मनाया। कभी ध्यान के गहरे प्रयोग, कभी भगवन्नाम कीर्तन, कभी आत्मा-परमात्मा पर गंभीर प्रवचन, कभी विनोदी कार्यक्रम, कभी निकट दर्शन की लालसा लिये भक्तों ने लगाई लंबी लाइनें तो कभी स्वयं पू. गुरुदेवश्री ही व्यासपीठ से उतरकर पहुँचे भक्तों के बीच। कुल मिलाकर,

सभी इन्द्रियों में हुई रोशनी है, यथा वस्तु है सो तथा भासती है।
विकारी जगत् ब्रह्म है निर्विकारी, मनी आज अच्छी दिवाली हमारी ॥

पूज्य बापू के सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
९ से १२ नवम्बर	दाहोद (गुज.)	सत्संग प्रथम दो दिन पूज्य नारायण साँईं और श्री सुरेशानंदजी द्वारा।	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०	कॉलेज ग्राउण्ड, दाहोद (गुज.)।	४२८४१, २२८११, २१२१०, २१३६१.

पूर्णिमा दर्शन : ११ नवम्बर, दाहोद (गुज.) में। आदिवासियों के लिए भण्डारा १२ नवम्बर को।

पूज्य बापू अब कुछ समय तक मौन एवं ध्यान-समाधि में अधिक-से-अधिक समय बिताएँगे। दाहोद के सत्संग के दौरान भी पूनमदर्शन के पर्व पर मौन रहकर ही दर्शन देंगे। पूज्यश्री जितना अधिक मौन एवं ध्यान-समाधि में निमग्न रहेंगे, उतना अधिक उनकी ओर से हमें अपनी आध्यात्मिक साधना में बल मिलेगा, परमात्मा की कृपा बरसेगी, साधनारत साधकों-मुमुक्षुओं की अधिक उन्नति होगी।